कर्मन् की गत न्यारी

गणि श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.

कर्मन् की गत न्यारी

6

लेखक

भारत वर्षालंकार, परम शासन प्रभावक स्व. पूज्यपाद
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. के
शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद
पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के
चरम शिष्यरत्न गोडवाड के गौरव, प्रभावक प्रवचनकार

पू. गणिवर्यश्री रत्नसेनविजयजी म. सा.

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

1) C/o. सुरेन्द्र जैन © 2684 31 40
4, मेरी विला बिल्डींग, पहला माला, मांजरेकर वाडी,
मथुरादास वसनजी रोड, अंधेरी (ईस्ट), मुंबई-69.

2) C/o. सुरेन्द्र जैन © 2203 4529
47, कोलभाट लेन, ऑ.नं. 5, डॉ. एम.बी. वेल्कर स्ट्रीट,
ग्राउन्ड फ्लोर, मुंबई-400 002.

संस्करण : द्वितीय

विमोचन : महा सुदी १३+१४

दि. 15-2-2003

पू. गणिवर्य श्री के संयम जीवन

27 के वर्ष में प्रवेश

मूल्य : 35 रुपये

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 2000 रु.

- क्या आप जैन धर्म के रहस्य - जैन इतिहास - जैन तत्वज्ञान - जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हो ?
- तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन बम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। आजीवन सदस्यों को जिन शासन के अजोड़ प्रभावक स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य श्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रभावक प्रवचनकार पू. गणिवर्यश्री रत्नसेन विजयजी म. सा. का उपलब्ध हिन्दी साहित्य, प्रतिमास प्रकाशित अर्हद दिव्य संदेश एवं भविष्य में प्रकाशित हिन्दी साहित्य घर बैठे पहुँचाया जाएगा।

प्राप्ति स्थान :

1. मांगीलाल एच. नागोरी
हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भंडार
1628, शुक्रवार पेठ, पुणे - 2
© (R) 612 71 31 (O) 447 2401

2. प्रकाश बडोल्ला © 226 30 81
मुरली मार्केट, पहला माला,
20, डी. के. लेन,
बेंगलोर - 560 053. (कर्णाटक)

3. कांतिलाल मुणत © 34643
106, रामगढ़,
आयुर्वेदिक हॉस्पीटल के पास,
रतलाम - 457 001 (M.P.)

4. चंदन एजेंसी © 2205 6821
607, चीरा बाजार, ग्राउंड फ्लोर,
मुंबई - 400 002.
© R. : 2206 0674

5. संतोष मेहता © 21 1 0 19
मेहता टेक्सटाईल मील्स,
111, कटीयार स्ट्रीट,
इंदीरा नगर,
ईरोड - 638 003. (T.N.)

6. चेतन हसमुख लाल मेहता
पवनकुंज, 3rd Floor,
नाकोडा हॉस्पीटल के पास,
भायंदर-401 101.
Tel. : 2814 0706

आजीवन सदस्यता शुल्क भिजवाने का पता :

दिव्य संदेश प्रकाशन

1) C/o. सुरेन्द्र जैन © 2684 3140
4, मेरी विला बिल्डींग, पहला माला,
मांजरेकर वाडी,
मथुरादास वसनजी रोड,
अंधेरी (ईस्ट), मुंबई - 400 069.

2) C/o. सुरेन्द्र जैन © 2203 45 29
47, कोलभाट लेन,
ऑ. नं. 5,
डॉ. एम.बी. वेल्कर लेन,
ग्राउन्ड फ्लोर, मुंबई - 400 002.

अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि
परोपकारी पूज्य गुरूदेव
पंन्यास प्रवर

श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य

निवेदक

गुरूपाद पद्म रेणु

गणि रत्नसेन विजय

अध्यात्मयोगी नि:सपृह शिरोमणि पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न

गोडवाड के गौरव पूज्य गणिवर्य

श्री रत्नसेन विजयजी म.सा.

प्रकाशक की कलम से

'कर्मन् की गत न्यारी' पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है । इस पुस्तक के लेखक विद्वान् गणिवर्य श्री रत्नसेनविजयजी म.सा. है, जो परमपूज्य वात्सल्यनिधि, नमस्कार महामंत्र के महान् साधक एवं विख्यात योगिराज पंन्यास प्रवर श्रीमद् भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न है । अपने महान् गुरुदेव के चरण-कमलों की सेवा का जो मेवा प्राप्त किया, उसे ये गणिवर्य अनेक पुस्तकों के रुप में जनता के श्रेयार्थ प्रदान कर रहे हैं ।

'कर्मन् की गत न्यारी' पुस्तक महासती मलयासुन्दरी के उदात्त जीवन की अनुपम कथा है जो जैन वाङ्मय में अत्यन्त लोकप्रिय है । आधुनिक युग में भौतिक सम्पदा की विपुलता में मानव जीवन भयाक्रान्त हो गया है । उसे शान्ति की मनमोहिनी मुरली का मधुर स्वर सुनने की आवश्यकता है जो उसके श्रवणपुटों में आनन्दामृत घोल सके, इस दृष्टि से इस पुस्तक की उपादेयता असंदिग्ध है ।

जैन वाङ्मय आदर्श एवं उदात्त चरित्रों की मंगल कथाओं से समृद्ध है । आजकल लोगों की रुचि कहानी एवं उपन्यास की ओर विशेष है । इस दृष्टि को ध्यान में रखकर पूज्य श्री ने इस आदर्श चरित्र द्वारा अपनी कथा का सुन्दर परिधान बुना है ।

प्रस्तुत पुस्तक का पठन-पाठन कर सभी आत्माएँ सन्मार्ग का स्वीकार और उन्मार्ग का त्याग करेगी तो लेखक का परिश्रम सफल हो सकेगा ।

लेखक की कलम से

विक्रम संवत् २०३८ की साल !

वर्धमान तप के बेजोड़ तपस्वी पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय राजतिलकसूरीश्वरजी म.सा. आदि के साथ मेरा भी चातुर्मास जन्मभूमि-बाली (राज.) में था । पूज्यपादश्री की आज्ञा से चातुर्मास दरम्यान मुझे भी प्रवचन करने पडते थे । वर्तमानकालीन अधिकांशतः जन-समाज कथानुप्रिय होने से 'योगशास्त्र' प्रवचनान्तर्गत मैंने पू. आचार्यश्री जयतिलकसूरिजी कृत 'श्रीमलयसुन्दरीचरित्रम्' के आधार पर महासती मलयासुंदरी की कथा कही थी ।

महासती मलयासुंदरी की यह कहानी प्रेरणाओं का अद्‌भूत स्त्रोत है । सुख-दुःख के द्वंद्वों से भरपूर इस मानव जीवन में सतीत्व के महान् आदर्श को प्रस्तुत करनेवाली यह कहानी सचमुच ही हमें जीवन जीने की एक कला सिखाती है ।

महासती के पवित्र-चरित्र श्रवण के बाद अनेक श्रोताओं के दिल में इस कथा को सांद्यत पुस्तक रुप में प्रगट करने की इच्छा पैदा हुई । श्रोताओं की मांग को ध्यान में रखकर चरित्र-ग्रंथ के आधार पर 'कर्मन् की गत न्यारी...' कथा का आलेखन किया और लुधियाना (पंजाब) से प्रकाशित 'विजयानंद' मासिक में प्रकाशनार्थ भेज दी । जून १९८३ से नवम्बर १९८४ तक के प्रत्येक अंकों में यह धारावाहिक कहानी प्रकाशित हुई थी और आज यह कहानी पुस्तक रुप में प्रगट हो रही है ।

इस सम्पूर्ण विश्व के ऊपर अरिहंत की आज्ञा का एकचक्री शासन है । अरिहंत की आज्ञा का पालन आत्मा को उर्ध्वगामी बनाता है और अरिहंत की आज्ञा का उल्लंघन आत्मा को अधोगामी बनाता है ।

जिनाज्ञा के अल्लंघन अतिक्रमण से आत्मा नवीन कर्मों का बंध करती है और उन कर्मों के उदय से आत्मा को नानाविध भयंकर कष्ट सहन करने पड़ते हैं ।

कर्म की गति न्यारी-निराली है कर्म के लिए राजा को रंक और रंक को राजा बनाना बिल्कुल आसान बात है ।

महासती मलयासुंदरी उत्तम राजकुल में पैदा हुई थी, पूर्वभव में उपार्जित दुष्कर्मों के कारण उसके जीवन में भयंकर कष्ट आए थे, परन्तु जिनधर्म से वासित बनी महासती ने उन सब कष्टों को हंसते मुंह स्वीकार किया था, सहन किया था ।

दुःख को-अनिच्छा से सहन करने से अकाम निर्जरा होती है और दुःख को इच्छापूर्वक सहन करने से सकाम निर्जरा होती है ।

सामान्य व्यक्ति जीवन में सुख का तो स्वीकार कर लेता है, किन्तु-दुःख का इन्कार कर देता है, और इसी कारण कर्म-बंध की परम्परा चलती रहती है ।

मानवीय जीवन अनेकविध द्वंद्वों से भरपूर है । सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता तथा संयोग-वियोग के द्वन्द्व जीव को कर्म के फंदे में फंसा देते हैं, परन्तु जिनधर्म से वासित आत्मा सभी संयोगों में समत्व भाव धारण कर कर्मों की एकमात्र निर्जरा ही करती है और अंत में कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त बनकर परम पद को प्राप्त करती है ।

महासती मलया की जीवन-यात्रा एक वन-यात्रा की भांति है । वन में कहीं प्राकृतिक सौंदर्य होता है तो कहीं कंटीली झाडियाँ और क्रूर प्राणी भी होते हैं ।

★ कर्म की विचित्रता के कारण राजकुमारी मलया को पिता की ओर से भी तिरस्कार मिलता है ।

★ गर्भवती मलया को श्वसुर जंगल में भिजवा देता है ।

मलया अनेक दुष्ट पुरुषों के जाल में फंस जाती है-फिर भी आश्चर्य है कि अनेकविध कष्टों के बीच भी मलया ने अपने शील को खंडित नहीं होने दिया । 'प्राण से भी प्यारे शील' के रक्षण के लिए उसने कष्टों की कोई परवाह नहीं की ।

महासती मलया की यह गौरव गाथा शील के महान् आदर्श की ज्वलंत मिशाल है । वर्तमान युग में जहां चारों ओर शील की निलामी हो रही है-चारों ओर बलात्कार और व्यभिचार के पाप दिन-

प्रतिदिन बढते जा रहे है । आधुनिक नारी अपने शील के प्राकृतिक सौंदर्य को खोकर कृत्रिम सौंदर्य के पीछे पागल बनी है, ऐसी विकट परिस्थिति में शील व सदाचार के आदर्श को प्रस्तुत करनेवाली महासती के चरित्र की यह कथा अवश्य ही हमारी सुषुप्त चेतना को जागृत कर सकेगी, इसी एकमात्र उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत कथा का आलेखन हुआ है । कथा-आलेखन का यह मेरा प्रथम ही प्रयास है ।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन प.पू. सौजन्यमूर्ति आचार्य श्रीमद् विजय प्रद्योतनसूरीश्वरजी म. के शुभाशीर्वाद का ही फल है । पुस्तक प्रकाशन में प.पू. विद्वद्वर्य मु. श्री वज्रसेनविजयजी म.सा. का भी सराहनीय सहयोग रहा, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ, इसके साथ ही पू.मु. श्री पूर्णचन्द्रविजयजी गणिवर्य ने पुस्तक के अनुरुप प्रस्तावना लिखकर भेजी है इसके लिए मैं उनका अत्यंत ही आभारी हूँ । इसमें जो कुछ शुभ है वह पूज्य गुरु भगवंतों की कृपा का ही फल है और जो कुछ भी त्रुटियां है-वह मेरी ही है ।

सभी गुणग्राही भव्यात्माएँ महासती के चरित्र का पुनः-पुनः स्वाध्याय कर महासती के उत्तम-आदर्शों को जीवन में आत्मसात् करने के लिए प्रयत्न करें, इसी शुभेच्छा के साथ !

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवरश्री
भद्रंकरविजयजी गणिवर्य शिष्याणु

मुनि रत्नसेनविजयज

(प्रथम आवृत्ति में से)

कर्म की गतिः न्यारी-निराली

लेखक : पू. गणिवर्य श्री पूर्णचंद्रविजयजी
(वर्तमान में पू. आचार्य श्री पूर्णचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.)

जैन-दर्शन में कथानुयोग का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका कारण यह है कि 'जीवों में मोक्ष-रुचि और संसार के प्रति अरुचि पैदा करानेवाली धर्मदेशना की ध्वनि को आबाल गोपाल तक पहुंचाने के लिए 'कथा' एक अत्यंत ही उपयोगी माध्यम है। यह माध्यम इतना सरल और सफल है कि बालक की तरह एक विद्वान् भी इससे आकर्षित हुए बिना नहीं रहता है। इसी कारण जैन-श्रुत में 'धर्मकथानुयोग' नामक महत्त्वपूर्ण विभाग आज तक सुरक्षित रहा है और समय समय पर इसमें वृद्धि होने से अपने को परम्परा से प्राप्त 'श्रुत-वैभव' एक से एक बढकर कथाओं के खजाने से भरपूर है।

जैन दर्शन का यह कथा-भंडार अनेक-दृष्टि से अनुपम अजोड़ दिखाई पडता है। विश्व के कथा-साहित्य में यह कथाभंडार अपनी अनेकविध विशेषताओं के कारण अलग ही पड जाता है और इसके अनेक कारण है। 'बुद्धि में न उतरे' ऐसी कल्पनाओं से यह साहित्य दूर ही है। जो घटनाएँ असंभवित न हो, उन्हीं घटनाओं के आधार पर इस साहित्य का निर्माण हुआ है और इसके साथ ही प्रत्येक कथा के पीछे सर्जक का उद्देश्य संसार की भयंकरता और मुक्ति की भद्रंकरता के संदेश को प्रगट करने का रहा है और प्रत्येक कथा-सर्जक ने अपने इस संकल्प को अखंडित रुप से बनाए रखा है। इन्हीं तथा इस प्रकार के अनेक कारणों से जैन-साहित्य में जैसा कथा-भंडार देखने को मिलता है, वैसा कथा-भंडार अन्यत्र स्वप्न में भी देखने को मिलना कठिन है।

'कर्मन् की गत न्यारी...' नामक प्रस्तुत कृति जैन कथा साहित्य सागर में से प्राप्त चमकता हुआ रत्न है। उस रत्न को ग्रहण कर और उसे अधिक चमकदार बनाकर मुनिराजश्री रत्नसेनविजयजी म. ने इस पुस्तक-पात्र में यशस्वी रुप से उसे प्रतिष्ठित किया है। अध्यात्मयोगी पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री के

तेजस्वी शिष्य रत्न मुनिश्री ने अल्प वर्ष के संयमपर्याय में जो अनेकविध प्रगति की है, उसी का यह परिणाम है कि उनके द्वारा सर्जित उपयोगी हिन्दी साहित्य ठीक-ठीक प्रकाशित हुआ है और वह साहित्य बहुजन समाज को उपकारक भी बन रहा है। उनकी मातृभाषा हिन्दी होने से, अध्यात्मयोगी पूज्य पंन्यासजी महाराज के प्रवचन-साहित्य के गुजराती-विस्तरण एवं हिन्दीकरण से प्रारम्भ हुई, उनकी साहित्य-यात्रा मौलिक सर्जन के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय प्रगति कर रही है और उसमें भी कथा-वार्ता जैसे विषय को प्रस्तुत करने में उनको प्राप्त सफलता आशास्पद भावि की प्रतीति करा देती है-यह बात हमें प्रस्तुत कृति कह रही है।

कर्म की गति कैसी विचित्र होती है ? वह कभी किन्हीं तरिकों से रंक को राजा भी बना देती है और कभी राजा को रंक बनाते हुए भी उसे लेश भी रंज नहीं होता है। इस सनातन-सत्य का सुंदर और सचोट निरुपण 'कर्मन् की गत न्यारी...' के प्रकरण में प्रतिध्वनित होता है। २० प्रकरण के विस्तार को प्राप्त इस प्राचीन शास्त्रीय वार्ता में 'महाबल और मलयासुंदरी' के दो मुख्य पात्रों के माध्यम से कर्म की न्यारी-निराली गति का जो शब्द-चित्र हमारी आंखों के सामने उपस्थित होता है, उसमें से प्राप्त होने वाली अनेकविध प्रेरणाएँ इतनी अधिक मूल्यवान् है कि यदि उन्हें आत्मसात् किया जाय तो वे प्रेरणाएँ हमारी जीवन यात्रा को प्रगति के पथ पर आगे बढा सकती है।

जीवन की विकास-यात्रा अत्यंत ही अटपटी है, उसमें धर्म का आलंबन किस प्रकार जीवन को आत्म-विकास के मार्ग में आगे बढ़ा देता है ? और कर्म की भूल किस प्रकार जीवात्मा को पतन के भयंकर गर्त में डाल देती है ? इसका वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती हुई इस कथा-वार्ता के शिल्पी मुनिश्री से हम ऐसी आशा रखते हैं कि इसी प्रकार अन्य भी अप्रगट कथा-रत्न उनकी कलम से तेजस्वी रुप को धारण कर प्रकाश में आए और वे कथारत्न सभी को विकास का पंथ बताते रहे।

चैत्र पूर्णिमा,
सिद्धक्षेत्र
ता. ५-४-८५

पू. गणिवर्य श्री रत्नसेन विजयजी म. सा. का हिन्दी साहित्य

1.	वात्सल्य के महासागर	अप्राप्य
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	,,
3.	चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना	,,
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	,,
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना	,,
6.	कर्मन की गत न्यारी	35.00
7.	आनन्दघन चौबीसी विवेचना	अप्राप्य
8.	मानवता तब महक उठेगी	,,
9.	मानवता के दीप जलाएं	,,
10.	जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	,,
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	,,
12.	युवानो ! जागो	,,
13.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1	,,
14.	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2	,,
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	,,
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	,,
17.	जीवन की मंगल यात्रा	,,
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	,,
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	,,
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	,,
21.	The Light of Humanity	,,
22.	अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी	,,
23.	युवा चेतना विशेषांक	,,
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	,,
25.	शीतल नहीं छाया रे...(गुजराती)	,,
26.	युवा संदेश	,,
27.	रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1	,,
28.	रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2	,,
29.	श्रावक जीवन-दर्शन	,,
30.	जीवन निर्माण विशेषांक	,,
31.	The Message for the Youth	,,
32.	यौवन-सुरक्षा विशेषांक	,,
33.	आनन्द की शोध	,,
34.	आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-1	,,
35.	आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-2	,,
36.	गिरिराज यात्रा	,,
37.	सवाल आपके जवाब हमारे	,,
38.	जैन विज्ञान	,,
39.	आहार विज्ञान	,,
40.	How to live true life ?	,,
41.	भक्ति से मुक्ति (चतुर्थ आवृत्ति)	,,
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	30.00
43.	प्रिय कहानियाँ	अप्राप्य
44.	अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव	,,
45.	आओ ! श्रावक बने	,,
46.	गौतमस्वामी-जंबुस्वामी	,,
47.	जैनाचार विशेषांक	,,
48.	हंस श्राद्ध व्रत दीपिका	अप्राप्य
49.	कर्म को नहीं शर्म	,,
50.	मनोहर कहानियाँ	,,
51.	मृत्यु-महोत्सव	,,
52.	Chaitya-Vandan Sootra	,,
53.	सफलता की सीढ़ियाँ	,,
54.	श्रमणाचार विशेषांक	,,
55.	देववंदन तपमाला	25.00
56.	नवपद प्रवचन	अप्राप्य
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	,,
58.	तेजस्वी सितारें	,,
59.	सन्नारी विशेषांक	,,
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	,,
61.	Panch Pratikraman sootra	25.00
62.	जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)	अप्राप्य
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)	,,
64.	अमृत की बुंदे	,,
65.	श्रीपाल मयणा	,,
66.	शंका और समाधान (द्वि.आ.)	35.00
67.	प्रवचनधारा	अप्राप्य
68.	धरती तीरथ'री	अप्राप्य
69.	क्षमापना	अप्राप्य
70.	भगवान महावीर	अप्राप्य
71.	आओ ! पौषध करें	अप्राप्य
72.	प्रवचन मोती	अप्राप्य
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	अप्राप्य
74.	श्रावक कर्तव्य-1	अप्राप्य
75.	श्रावक कर्तव्य-2	अप्राप्य
76.	कर्म नचाए नाच	30.00
77.	माता-पिता	अप्राप्य
78.	प्रवचन रत्न	अप्राप्य
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखें	,,
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	,,
81.	जिनशासन के ज्योतिर्धर	,,
82.	आहार : क्यों और कैसे ?	35.00
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	50.00
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	अप्राप्य
85.	भाव श्रावक	35.00
86.	महान ज्योतिर्धर	अप्राप्य
87.	संतोषी नर-सदा सुखी	30.00
88.	आओ ! पूजा पढाएँ !	35.00
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	35.00
90.	चिंतन-मोती	25.00
91.	प्रेरक-कहानियाँ	25.00
92.	आई वडीलांचे उपकार	30.00
93.	महासतियों का जीवन संदेश	30.00

अनुक्रमणिका

क्र.	क्या	कहाँ
१.	गुणवर्मा	१
२.	लोभ	३
३.	इष्ट मिलन	६
४.	विषाद	१०
५.	आपत्ति के बादल	१४
६.	अद्‌भुत चमत्कार	१८
७.	गुटिका प्रभाव	२४
८.	रात एक: बात अनेक	३७
९.	अनोखा निमितज्ञ !!!	४९
१०.	चमत्कार	५४
११.	आश्चर्यों की परम्परा	७०
१२.	सुवर्ण-पुरुष	७९
१३.	माया जाल	८८
१४.	भयंकर आघात	१००
१५.	कामांध बलसार	१०५
१६.	संयोग-वियोग	११०
१७.	पाप की सजा	१२१
१८.	मङ्गल-मिलन	१३२
१९.	अतीत का अवलोकन	१३८
२०.	बन्धन से मुक्ति	१४३

१. गुणवर्मा

भारत की यह पावन भूमि अनेक संत-महर्षियों की जनेता है । इस पवित्र देश के इतिहास का विहंगावलोकन करने पर अनेक परम प्रतापी एवं शौर्यवान् राजाओं के प्रेरक चरित्र आंखों के सामने खड़े हो जाते हैं । इस आर्यभूमि का इतिहास अनेक राजा महाराजाओं के निर्मल तथा पवित्र जीवन की गौरव गाथाओं से भरा पड़ा है ।

इसी भारतदेश में चन्द्रावती नाम की नगरी थी । वैभव और विलास से भरपूर यह नगरी इन्द्र की अलकापुरी को भी मात करती थी ।

इस चन्द्रावती के महाराजा थे **वीरधवल ।**

शौर्य और पराक्रम की वे साक्षात् मूर्ति थे । वे सूर्य सम तेजस्वी थे । जहां वे शत्रुओं को परास्त करने में भीमकाय थे, तो एक सुयोग्य प्रजापालक भी थे ।

उनका निर्मल यश दूर-सुदूर, दिग्-दिगन्त तक फैला हुआ था । वे दीन-दु:खियों के लिए साक्षात् करुणामूर्ति थे । वे कुशल राजनीतिज्ञ भी थे ।

शत्रुओं के लिए वे साक्षात् यम के अवतार थे । उन्होंने अपने जीवन में अनेक संग्राम खेले थे, किन्तु कभी भी शत्रु को पीठ नहीं दिखाई थी । उनके यश की गाथा दिग्-दिगन्त तक फैली हुई थी ।

उनके दो मुख्य रानियाँ थी । जिनके नाम थे, **चंपकमाला** और **कन-कवती ।** चंपकमाला और कनकवती दोनों साक्षात् रति की अवतार थी । रुप और सौन्दर्य में उन्होंने देवांगना को भी परास्त कर दिया था ।

दोनों महारानियों के साथ भोगविलास करता हुआ वीरधवल राजा अपने यौवनकाल को आनन्द पूर्वक व्यतीत कर रहा था ।

संध्या का समय था । सूर्य नारायण अस्ताचल की गोद में सो चुके थे । अंधेरा धीरे धीरे पृथ्वी तल पर अपना साम्राज्य फैलाने के लिए आगे बढ रहा था । **चन्द्रमा** अपनी सोलह कलाओं से खिलकर पृथ्वी तल को प्रकाशित कर रहा था । आकाश में दीर्घ निद्रा से जागृत बने अगणित तारें मानो चन्द्रमा के प्रकाश से स्पर्द्धा कर रहे थे ।

रात्रि के अर्ध प्रहर बीतने के साथ ही महाराजा अपने शयन खंड में आये । वे कुछ उदास दिखाई दे रहे थे । इतने में सोलह श्रृंगार सजी महारानी चंपकमाला ने महाराजा के शयन खंड में प्रवेश किया ।

महाराजा के चेहरे को अत्यंत उदासीन देख कर चंपकमाला विचारों की अतल गहराई में डूब गई ।

वह सोचने लगी, ``यह क्या ! आज स्वामी नाथ, इतने उदास क्यों ? रोज तो मेरे आने के साथ ही उनके मुख मंडल पर प्रसन्नता छा जाती है और आज वे मुझे देख भी नहीं रहे हैं । आखिर बात क्या है ? क्या स्वामी नाथ का स्वास्थ्य आज ठीक नहीं है ? क्या किसी ने उन्हें धोखा दिया है ?''

महाराजा को उदासीन देख महारानी चंपकमाला कल्पनाओं के जाल में फंस गई है । अंत में वह मधुर स्वर से बोली, **``स्वामीनाथ !''**

`अरे, तुम कब आई हो ?'

`मुझे आए तो एक घड़ी बीत चुकी है ।'

`परन्तु मुझे तो तेरे आगमन का पता ही नहीं चला ।'

`स्वामीनाथ ! सच कहो, आज आप इतने चिंतित क्यों हो ? किस घटना ने आपको इस चिंता सागर में डाल दिया है ?'

`हे प्रिये ! चिंता का कारण तू स्वयं जानती है । यौवन पार हो चुका है और अभी तक राज्य के उत्तराधिकारी पुत्र...।'

सुनते ही चंपकमाला बोली, `स्वामी नाथ ! आपकी चिंता का कारण मैं जान गई, परन्तु ! पुत्र-पुत्री की प्राप्ति तो भाग्य के अधीन है, कर्म के अधीन है, उसके लिए किया भी क्या जा सकता है ? संतान-प्राप्ति में हमें जो अंतराय आ पड़ा है, उसके किए हमें इष्ट देव की आराधना करनी चाहिए । पुण्य में अभिवृद्धि करनी चाहिये ।'

वीरधवल ने कहा, `महारानी ! तेरी बुद्धिमत्ता पर मुझे गर्व है । तेरी जैसी सुशील नारी को पाकर मैं धन्य हो गया हूँ । परन्तु हे प्रिये ! पुत्र के अभाव में उस लोभनन्दी की क्या हालत हुई ? यह सुन कर मेरा मन चिंता के सागर में डूब गया ।'

महारानी ने पूछा, `कौन है वह लोभनंदी ?'

महाराजा बोले, अभी गुणवर्मा अपनी सारी घटना सुनाकर गया है ।'

`तो सुनाओ, मुझे भी वह घटना ! मुझे बड़ी जिज्ञासा है', रानी ने कहा ।

२. लोभ

(महाराजा वीरधवल प्रजा के सुख-दु:ख की घटना को सुनने के लिए हर समय तैयार रहते थे। अपने राजमहल में उन्होंने एक घण्टा लगा रखा था, जिसकी डोर राजमहल के द्वार पर लगी हुई थी। कोई भी व्यक्ति राजा से मिलना चाहता हो तो वह उस घंट को बजा देता। घण्टे की ध्वनि को सुनकर राजा अपने प्रातिहारी के माध्यम से आगंतुक को बुला लेते और उसकी बात को ध्यानपूर्वक सुनते।)

राजा ने रानी को कहा, `हे प्रिये ! आज संध्या समय मैं झरोखे में बैठकर नगरी के दृश्य को देख रहा था तभी अचानक मैंने घंटे की आवाज सुनी। तत्काल प्रातिहारी मेरे सामने आ खड़ा हुआ। तत्क्षण मैंने उसे आगंतुक को आने की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पाते ही प्रातिहारी द्वार पर पहुंच गया और उसने आगंतुक को मेरे पास आने की अनुमति दी।'

बैठक खण्ड में प्रवेश करते ही आगंतुक ने मुझे अर्द्धावनत होकर नमस्कार किया।

मैंने पूछा, `कैसे आगमन हुआ ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

आगंतुक ने कहा, `स्वामी नाथ ! मेरा नाम **गुणवर्मा** है। मैं इसी नगर का निवासी हूँ और अपने पिता तथा चाचा की न्यासापहार की भूल के लिए क्षमा मांगने आया हूँ।'

मैंने कहा, `पूरी बात सुनाओ।'

मेरे कहने पर गुणवर्मा ने विस्तार से अपनी सारी घटना कह सुनाई, जो इस प्रकार है -

इसी नगरी में लोभनंदी और लोभाकर नाम के दो वणिक् रहते हैं। अपने नाम के अनुरुप वे अत्यंत ही लोभी हैं। अर्थ में लुब्ध बने, वे दिन-रात परिश्रम करते रहते हैं। न आराम से खाते हैं न रात्रि में आराम से सोते हैं। दिन और रात धन के संग्रह में ही मस्त रहते हैं। उनका लोहे के सामान और किराने का बड़ा व्यापार है।

लोभाकर के गुणवर्मा नाम का पुत्र है। लोभनंदी के कोई सन्तान नहीं है। संतानहीन होने पर भी उसका लोभ कुछ कम नहीं है। दोनों भाई व्यापार में सदैव लगे रहते हैं। व्यापार के माध्यम से उन्होंने लाखों रुपयों की पूँजी भी इकट्ठी की है।

एक दिन की बात है-एक भद्र आकृति वाला पुरुष उस नगर में आया। उसके चेहरे से लगता था कि वह दूर देशांतर से चल कर आ रहा है। उसके पास एक अमूल्य निधि थी। वह अपनी निधि कहीं न्यास के रुप में रख कर आगे जाना चाहता था। नगरजनों से वह सर्वथा अपरिचित था। अचानक वह लोभनंदी और लोभाकर की दुकान पर आ गया, जहां श्रेष्ठियों ने मिलकर उसका हार्दिक स्वागत किया।

श्रेष्ठियों द्वारा किये स्वागत को देखकर वह आगंतुक प्रसन्न हो गया। उसे विश्वास हो गया कि यहां न्यास रखने में कोई तकलीफ नहीं हैं। अतः उसने अपनी थैली में से एक तूंबड़ा निकाला और लोभनंदी तथा लोभा कर को देते हुए कहा, आप मेरे इस तूंबडे को संभाल कर रखना, मैं कुछ दिनों के बाद इसे ले जाऊंगा।

तत्काल लोभनंदी ने वह तूंबडा ले लिया और उसे दुकान के एक कमरे में दिवाल में लगी खुटी पर टांग दिया। तूंबडे को देकर वह यात्री आगे बढ़ गया। थोड़े दिनों के बाद लोभनंदी कारणवश कमरे में गया तो वह आश्चर्य-चकित हो गया। उसने देखा, 'गर्मी के कारण तूंबडे में से रस नीचे टपक रहा है और वह लोहे की पाट पर गिर रहा है। उस रस के स्पर्श से लोहे की पाट सोने की हो गई है।

उसने सोचा, अहो ! यह तो कोई जादुई तूंबडी लगती है, जिसके रस के स्पर्शमात्र से ही लोहा सोना बन गया।

उसने यह बात अपने भाई लोभाकर को कही। लोभनंदी और लोभाकर का लोभ चरम सीमा पर पहुंच गया। उन दोनों भाइयों ने उस रस से लोहे का स्वर्ण बनाना चालू किया। देखते ही देखते उन्होंनें सैंकड़ों मण लोहे को सोने में बदल दिया। उन्होंने वह स्वर्ण अपने मकान के गर्भ-गृह में छुपा दिया।

कुछ ही दिनों बाद वह अज्ञात यात्री उस नगर में आया और उसने लोभाकर और लोभनंदी से अपनी न्यास (तूंबडी) मांगी।

तत्काल लोभनंदी ने अन्य किसी तूंबड़े के टुकड़े लाकर उस अज्ञात व्यक्ति को देते हुए कहा, ``भाई ! क्या कहूं, हमारी दुकान में चूहें बहुत है, अचानक एक दिन किसी चूहें ने इस तूंबड़े को नीचे गिरा दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये।''

उस अज्ञात पुरुष ने उस टुकड़ों को हाथ में लिया और निरीक्षण किया। तत्क्षण उसने कहा, ``ये मेरे तूंबड़े के टुकड़े नहीं है। मुझे अपना तूंबड़ा वापस लौटा दो, यह आपके लिए हितकारी नहीं है।''

अज्ञात पुरुष के कुछ कठोर शब्दों को सुन कर दोनों बंधु आग बगूला हो गए और बोले-``हरामखोर ! हमें झूठा सिद्ध करता है।''

लोभ, आदमी को कहां ले जाता है ? जब व्यक्ति लोभ में अंधा बन जाता है, तब वह माया का आश्रय लेता है और जब वह माया में असफल होता है, तब क्रोध का आश्रय लेता है। यदि क्रोध में सफल हो जाये तो अभिमान का ताज पहिन लेता है। इस प्रकार अकेले लोभ द्वारा वह चारों कषायों से युक्त हो जाता है। लोभ से सर्व गुणों का नाश होता है। लोभ सभी दोषों की खान है।

लोभनंदी और लोभाकर के रोष भरे शब्दों को सुनकर उस अज्ञात व्यक्ति ने अपनी स्तंभिनी-विद्या का प्रयोग किया और तत्काल दोनों बंधु अपने ही स्थान पर स्तंभित हो गये। स्तंभन विद्या का प्रयोग कर वह अज्ञात पुरुष आगे बढ़ गया।

स्तंभन विद्या से स्तंभित हो जाने के कारण वे दोनों भाई अब थोडे भी हिल नहीं सकते थे। उनकी गति रुक गई। अब वे न तो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते थे और न ही अन्य कुछ काम कर सकते थे।

एक ही स्थान पर स्थिर होने से हड्डियों के संधि स्थानो में भयंकर दर्द होने लगा। दर्द के मारे वे जोरों से कराहने लगे। उनकी दर्द भरी कराहों को सुनकर चारो ओर लोगो की भीड़ इकट्ठी हो गई, अनेक प्रयत्न करने पर भी वे हिल-डुल नहीं सके।

लोभाकर का पुत्र गुणवर्मा, जो व्यापार आदि के कार्य से अन्यत्र गया हुआ था, उसे अपने पिता के स्तंभित होने के समाचार मिले, वह तत्काल अपने गांव लौट आया। घर आकर अपने पिता और चाचा को स्तंभित देखकर आकुल-व्याकुल हो गया। तुरंत वैद्य को बुलाया। वैद्य ने बहुत उपचार किए। परन्तु मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग उपशांत नहीं हुआ तो किसी मन्त्रवादी ने कहा, `इस रोग का जनक ही इस रोग को उपशांत कर सकता है। अतः इस विद्या का प्रयोग करने वाले पुरुष की शोध करनी चाहिए।'

गुणवर्मा ने अपने पिता को पूछा-`आपको किसने स्तंभित किया है ? इस स्तंभन का कारण क्या है ?'

पुत्र के पूछने पर पिता ने सारी घटना सच-सच सुना दी।

गुणवर्मा स्वगत बोला-**`यह लोभ का ही कटु फल है।'**

उसने सोचा, `अब मुझे किसी भी प्रकार से पिता व चाचा को ठीक करना है। अतः इसके लिए उस व्यक्ति की शोध जरुरी है। परन्तु उस व्यक्ति को पहिचानना उसके लिए एक समस्या थी। उसने अपने पिता से कहा, `क्या उस व्यक्ति को कोई पहिचानता है ?'

पिता ने कहा-`अपना यह नौकर उस समय यहीं बैठा था वह उसे पहिचान लेगा।'

तत्काल पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने नौकर को साथ लेकर गुणवर्मा उस अज्ञात पुरुष की शोध में चल पड़ा।

३. इष्ट मिलन

गुणवर्मा अपने नौकर के साथ भीषण वन में से पार हो रहा था। मार्ग में उसकी अनेक व्यक्तियों से भेंट हुई। परन्तु जब तक इष्ट व्यक्ति से भेंट न हो, तब तक अन्य व्यक्ति का मिलन कैसे सार्थक बन सकता है ?

दोनों साथी उस अज्ञात पुरुष की शोध में एक लम्बी यात्रा कर रहे थे। लम्बी यात्रा के बाद भी उन्हें इष्ट व्यक्ति की मुलाकात नहीं हुई। पैदल सफर के कारण गुणवर्मा का नौकर थक गया। इस थकावट के कारण उसे बुखार चढ गया। अब वह आगे चलने में असमर्थ था।

गुणवर्मा ने एक-दो दिन तो उसकी सेवा की, फिर उसने सोचा, मैं यहीं रुक जाऊँगा तो इष्ट व्यक्ति कैसे मिलेगा ?' अतः उसने अपने साथी को भी छोड़ दिया और वह आगे बढ गया।

एक दिन वह सुबह से ही वह चलता जा रहा था। दोपहर हो चुकी थी। थक कर चूरचूर हो गया था। थकावट के कारण वह एक वृक्ष के नीचे आराम करने बैठा। परन्तु उसे निद्रा नहीं आई।

`कब वह अज्ञात पुरुष मिलेगा ?' इसी चिंता में उसकी नींद हराम हो चुकी थी।

थोड़ी ही देर में वह वापस बैठ गया। सामने नजर डाली तो उसने एक ऐसी नगरी देखी, जिसमें किसी भी प्रकार की चहलपहल नहीं थी। वहां मनुष्यों का आवागमन दिखाई नहीं देता था। पूरा नगर श्मशान की भांति शून्य प्रतीत हो रहा था। नगर में बड़ी-बड़ी हवेलियां थी, किन्तु सब शून्य पड़ी थी।

अचानक उसे नगर में से एक भद्र आकृति वाला पुरुष आता हुआ दिखाई दिया। वह पुरुष चिंतातुर लगता था। उसके मुख पर उदासीनता छाई

हुई थी ।

गुणवर्मा सावधान होकर बैठ गया । नगर में से आ रहा व्यक्ति गुणवर्मा के पास आया और पूछने लगा, `भाई ! आप कौन हो, और कहां से आ रहे हो ?'

गुणवर्मा ने कहा, `मैं दूर देश से आ रहा हूं, मेरा नाम गुणवर्मा है ।'

फिर गुणवर्मा ने पूछा-`आपका नाम क्या है और यह नगर शून्य क्यों है ?'

आगंतुक ने कहा-`मैं किसी सहयोगी की खोज में इस नगर में से आया हूँ । आपके चेहरे से लगता है, आप अत्यंत ही पराक्रमी है, और आप मुझे अवश्य सहायता करेंगे ।'

गुणवर्मा ने कहा, `भाई ! चिंता मत करो । आपकी आपत्ति मेरी आपत्ति है । आपको सहायता करना मेरा परम कर्तव्य है । मुझे बताओ, आप किस आपत्ति में हैं ?'

आगंतुक ने सोचा-`यह व्यक्ति परोपकारी लगता है, यह मेरी अवश्य सहायता करेगा ।' अतः उसने अपना परिचय और नगर-शून्यता का कारण बतलाना उचित समझा ।'

उसने कहा, `कुशवर्धन नाम का यह नगर है । भौतिक समृद्धि में इन्द्रपूरी के समान है । इस नगर में **सूर** नाम का राजा राज्य करता था, उसके दो पुत्र थे, **जयचन्द्र** और **विजयचन्द्र** ।

धीरे धीरे महाराजा वृद्धावस्था को प्राप्त हुए । उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र जयचन्द्र को सौंपने का निर्णय लिया । पुत्र का राज्याभिषेक करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई । राजा की आज्ञा के अनुसार धूमधाम के साथ जयचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ । विजयचन्द्र को राज्य नहीं मिल पाया । वह विजयचन्द्र मैं स्वयं ही हूँ ।

राज्य की प्राप्ति न होने से मैंने यहां ठहरना उचित नहीं समझा ।

अतः मैं गुप्त रुप से यहां से निकल पड़ा । मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया । आगे बढ़ते बढ़ते मैं चन्द्रावती नगरी में पहुंचा । वहां नगर के बाहर उद्यान में मैंने एक विद्या-सिद्ध पुरुष को देखा, जो अतिसार की बीमारी से ग्रस्त थे । उनकी पीड़ा देखकर मेरा हृदय द्रवित हो उठा । मैंने उनकी सेवा आरम्भ की । रोग की पीडा के कारण वे चलने में असमर्थ थे । अतः मैंने उनकी चिकित्सा एवं भोजन आदि की व्यवस्था कर दी । बराबर आठ दिनों के बाद उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया । स्वस्थ होने के बाद उन्होंने मेरा बहुत आभार माना ।

उन्होंने मेरा नाम आदि पूछा । मेरे इन्कार करने पर भी, उन्होंने मुझे दो विद्याएं प्रदान की । पहली विद्या के स्मरण से मैं किसी को स्तंभित कर सकता हूँ और दूसरी विद्या से मैं किसी को वश कर सकता हूँ । इन दो विद्याओं के साथ साथ उस सिद्ध पुरुष ने मुझे एक तूंबड़ा भी दिया, जिसके रस के स्पर्श मात्र से लोहा भी स्वर्ण बन जाता था । अंत में मैंने सिद्ध पुरुष को प्रणाम किया और मैं आगे बढ़ गया ।

मुझे अन्य देशों में जाना था, अतः मैंने सोचा, 'यह कीमती तूंबड़ा साथ में रखना ठीक नहीं है, इसे किसी व्यापारी के पास न्यास रख दूं ।' इस प्रकार विचार कर मैंने नगर में प्रवेश किया ।

उस नगर में लोभाकर और लोभनंदी की बहुत बड़ी दुकान थी, मैं वहां गया । उन्होंने मेरा सत्कार किया । मुझे वे विश्वसनीय प्रतीत हुए । अतः मैंने वह तूंबड़ा उनके पास न्यास के रुप में रख दिया और मैं आगे बढ़ गया ।'

कुछ महिनों के बाद मैं वापिस चन्द्रावती नगरी में आया और मैंने लोभाकर तथा लोभनन्दी से अपनी न्यास मांगी । परन्तु उन दोनों ने मेरे तूंबडे को कहीं छुपा दिया और मुझे दूसरे तूंबडे के टुकड़े लाकर सौंप दिये । मैंने कहा, 'ये टुकड़े मेरे तूंबड़े के नहीं हैं, मुझे मेरा तूंबड़ा लौटा दो ।' मेरे इन शब्दों को सुन कर वे क्रोधित हो गये । अतः मैंने उन्हें अपने किये का फल भुगतने के लिए तत्काल स्तंभित कर दिया और मैं आगे बढ़ गया ।

इतनी बात सुन कर गुणवर्मा को हर्ष भी हुआ और शोक भी । अपने पिता तथा चाचा की लोभ-वृत्ति के कारण उसे शोक हुआ और अपने पिता तथा चाचे को स्तंभित करने वाले पुरुष से भेंट हो जाने के कारण हर्ष भी हुआ ।

विजयचन्द्र ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा-``चन्द्रावती से धीरे धीरे आगे बढ़ता हुआ मैं पुनः इसी नगरी में आया, मैंने देखा, 'पूरा नगर श्मशानवत् शून्य पड़ा हुआ है ।' मुझे बड़ा दुःख हुआ । मैंने नगर में प्रवेश किया । कहीं कोई पुरुष अथवा पशु दिखाई नहीं दे रहा था । अंत में मैंने राज महल में प्रवेश किया । राजमहल में किसी प्रकार का कोलाहल नहीं था । राजमहल के प्रत्येक खण्ड का निरीक्षण किया, चारों ओर नीरव शांति थी ।''

अंत में राजमहल के ऊपरी खण्ड में पहुंचा तो अपने बड़े भाई जयचन्द्र के शयन कक्ष में अपनी भाभी विजया को देखा । विजया ने मुझे पहिचान लिया ।

मैंने पूछा, `यह महल शून्य क्यों है ? सभी प्रजाजन नगर छोडकर कहाँ चले गये ? मेरे बडे भैया कहां हैं ?'

भाभी विजया ने अश्रुभीनी आंखों से कहा, `देवरजी ! आपके जाने के बाद इस नगर की यह हालत हुई है । वर्षो पूर्व नगर के बाहर मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करने वाला एक तापस यहां आया था । तप के कारण उसकी चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी । एक बार उसके दीर्घ तप से आकृष्ट हो कर महाराजा ने उसे राज महल में पारणे के लिए आमंत्रण दिया । उसने वह आमंत्रण स्वीकार किया ।

तापस के पारणे के लिए महाराजा ने अनेक सुंदर पक्वान्न बनवाये । तापस का आगमन हुआ । तापस पारणे के लिए बैठा । महाराजा ने मुझे पंखा झूलाने का आदेश दिया । मैंने स्वामी की आज्ञा स्वीकार की । पारणे के समय तापस मेरी ओर देखता रहा, वह मेरे रुप पर मोहित हो गया । संध्या समय वह अपना वेश परिवर्तन कर राजमहल में आया और मुझसे काम की याचना करने लगा । मैंने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया । तभी अचानक महाराजा का आगमन हो गया । उसकी इस दुष्टवृत्ति को देख कर महाराजा आग-बबूला हो उठे । तत्काल सैनिकों के द्वारा उसे पकड लिया गया ।'

दूसरे दिन काला मुंह कर गधे पर बिठा कर उस तापस को नगर में घुमाया गया । सभी प्रजाजन उसे फिटकार देने लगे । अन्त में उसे फांसी के तख्ते पर चढा दिया गया ।

दुर्ध्यान से वह तापस मर कर राक्षस बना । विभंग ज्ञान से अपने पूर्वभव को देख उसे महाराजा पर अत्यन्त गुस्सा आया । उसने महाराजा को खत्म कर दिया ।

फिर उसने प्रजा को भी हैरान करना चालू किया । उसके भयंकर उपद्रव को सहन न करने के कारण प्रजाजन नगर छोड़ कर भागने लगे । मैं भी भाग रही थी । परन्तु उसने मुझे दबोच लिया और बोला, `तूं कहां भागती है ? तेरे लिए तो मैंनें यह विध्वंस लीला की है ।'

`उसने मुझे यहां रोक दिया । वह प्रतिदिन यहां रात को आता है और विलास करता है । दिन में वह बाहर रहता है ।'

अपनी भाभी के मुख से नगर की विध्वंसता का रहस्य जानकर मेरा

हृदय दु:ख से भर आया।

मैंने पूछा-`भाभी ! राक्षस के फंदे में से छूटने का कोई उपाय है ?'

उसने कहा-`एक उपाय है, उसकी एक कमजोरी को मैं जानती हूँ। उसके सो जाने पर यदि कोई पुरुष घी से उसके पैर के तलवें में जोरों से मालिश करे तो वह दीर्घ निद्रा में सो जाता है। फिर वशीकरण विद्या से उसे वश में किया जा सकता है।'

मैंने कहा-`भाभी ! आप निश्चिंत रहें, उस राक्षस का काल आ गया है, मैं अभी जाता हूँ। किसी वीर पुरुष की सहायता से शीघ्र ही इस राक्षस को वश में कर दूंगा।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए विजयचन्द्र ने गुणवर्मा से कहा, `हे शौर्य पुरुष ! मुझे विश्वास है कि आप इस आपत्ति में मेरी अवश्य सहायता करेंगे।'

गुणवर्मा ने सोचा, `यह वही अज्ञात पुरुष है, जिसने मेरे पिता को स्तंभित किया है, अतः यदि मैं इस समय इसकी सहायता करुंगा, तो बाद में अवश्य ही मेरा काम सिद्ध हो सकेगा।'

४. विषाद

गुणवर्मा ने तुरंत विजयचन्द्र को सहायता देने का आश्वासन दिया।

विजयचन्द्र ने कहा- `मित्र ! राक्षस के पांव में घी घिसने का काम तुम्हें करना है, तब तक मैं वशीकरण का जाप कर राक्षस को वश में कर लूँगा।'

सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए ही होती है, वे अपने आपको आपत्ति में डाल कर भी दूसरों की सहायता करना अधिक पसंद करते हैं। पर-हित के लिए दु:ख सहन करने में वे शोक के बदले हर्ष का अनुभव करते हैं।

गुणवर्मा और विजयचन्द्र ने पूरी तैयारी की। संध्या के समय वे दोनों राजमहल में छिपकर बैठ गये। रात्रि प्रारम्भ होते ही वह राक्षस आया और अपनी शय्या पर बैठते हुए बोला, `विजया ! आज किसी मनुष्य की गंध कैसे आ रही है ?'

`अरे ! मैं मानुषी ही तो हूँ। मेरी गंध क्यों न आये ? और आपके होते

हुए यहां आने का साहस भी कौन कर सकता है ?'

राक्षस को विजया की बात पर विश्वास आ गया और वह लंबा होकर सो गया। विजया प्रतिदिन उसके पैरों में तेल का मर्दन करती थी, अतः स्त्री वेष में गुणवर्मा तुरंत विजया के स्थान पर बैठ गया। विजया दूसरे कमरे में चली गई।

गुणवर्मा जोरों से घी से मालिश करने लगा। इधर जयचन्द्र ने वशीकरण विद्या का जाप चालू किया। राक्षस थोड़ी देर में जागृत होकर बैठने लगा परन्तु गुणवर्मा निर्भीकता पूर्वक घी की मालिश कर रहा होने से वह संदेहरहित होकर सो गया।

कुछ ही देर में विजयचन्द्र का जाप पूरा हो गया और गुणवर्मा ने भी पांव का मर्दन करना बंद कर दिया। अपने सामने दो मनुष्यों को देख कर वह राक्षस उन्हें मारने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु वशीकरण विद्या से वशीभूत हो जाने के कारण वह कुछ भी करने में असमर्थ हो गया।

राक्षस बोला-`क्षमा करो ! मैं आज से आपका दासत्व स्वीकार करता हूँ। आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करुंगा। कृपया मुझे मुक्त कीजिये।'

विजयचन्द्र ने उसे मुक्त कर दिया और आदेश दिया, `इस नगर को पुनः बसा दो।'

विजयचन्द्र का आदेश पाते ही राक्षस ने नगर के वातावरण को बदल दिया। दूर दूर से लोग आकर वापस बसने लगे। जयचन्द्र राजा के मंत्री भी नगर में वापस लौटने लगे। सभी प्रजाजनों ने मिलकर राजपुत्र विजयचन्द्र का राज्याभिषेक किया।

राज्याभिषेक के बाद राजा विजयचन्द्र ने गुणवर्मा को कहा-`हे बंधुवर्य ! तुम्हारी सहायता से मैं इस राज्य को पुनः प्राप्त कर सका हूँ, अतः इस राज्य में से तुम्हें जो वस्तु चाहिये, वह मांग लो।'

अवसर देख गुणवर्मा ने कहा-`राजन् ! मैंने तो कोई उपकार नहीं किया है, फिर भी आप देना ही चाहते हैं तो चन्द्रावती नगरी के अन्दर आपने मेरे पिता और चाचा को स्तंभित कर दिया है, उन्हें कृपया मुक्त कर दे।'

विजयचन्द्र तो यह बात सुनते ही अवाक् रह गया । उसने कहा, `क्या वे तुम्हारे पिता और चाचा थे ? ओहो ! इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है, जहर के कुंड में से अमृत की धारा बहे । कहां तुम्हारे लोभी पिता एवं चाचा और कहां तुम्हारा परोपकारी जीवन ? तुम्हारे पिता को बंधन मुक्त करना तो तुम्हारे ही हाथ में है ।'

गुणवर्मा ने पूछा-`कैसे ?'

विजयचन्द्र बोला-`इस नगर के पास ही श्रृङ्ग नाम का पर्वत है । उसकी एक विशेषता है, उसका द्वार नेत्र-पुट की भांति खुलता है और बंद होता है । उसके अंदर एक बावड़ी है । उस बावड़ी में से कोई निर्भीक जल लावे और उस जल को अपने पिता पर छिड़के तो वह इस स्तंभन विद्या के बंधन से मुक्त हो सकता है, अन्य के जल-छंटकाव से नहीं ।

उपाय जान कर गुणवर्मा ने कहा, `तो मैं वह जल लाने के लिए तैयार हूँ ।'

विजयचन्द्र ने सोचा, `ओहो ! कैसा पितृभक्त है यह नौजवान ! अपने पिता के लिए मरणांत कष्ट भी सहन करने के लिए तैयार है । उसे पता था कि उस बावडी से जल ग्रहण करते समय यदि मनुष्य भयभीत हो जाये तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जाती है ।'

बस, उसी समय विजयचन्द्र भी उसकी सहायता के लिए तैयार हो गया और दोनों तत्काल उस पर्वत के समीप आ गए । गुणवर्मा साहस करके बावड़ी में नीचे उतरा और बड़ी सावधानी से जल लेकर बाहर आ गया ।

इस पर्वत से चन्द्रावती नगरी बहुत दूर थी अतः विजयचन्द्र ने राक्षस को याद किया । स्मरणमात्र से ही राक्षस उपस्थित हो गया । विजयचन्द्र और गुणवर्मा दोनों घोड़े पर सवार हो गये । कुछ ही समय में दोनों चन्द्रावती में आ गये । घर आकर गुणवर्मा ने अपने पिता लोभाकर पर जल का छंटकाव किया । उस जल के छंटकाव से लोभाकर उस स्तंभन से मुक्त हो गया । पुत्र के अभाव के कारण लोभनंदी उसी हालत में रहा और अंत में भयंकर वेदना से दु:खी होकर मर गया ।

गुणवर्मा ने विजयचन्द्र राजा का स्वागत किया । गुणवर्मा के आग्रह से राजा वहां दो दिन ठहरा । अपने पिता के द्वारा छुपाया हुआ रस तूंबड़ा लाकर

गुणवर्मा ने विजयचन्द्र को सौंप दिया ।

विजयचन्द्र ने गुणवर्मा को मंत्री पद लेने का आग्रह किया, परन्तु गुणवर्मा ने इन्कार कर दिया । अंत में राजा ने वह रस-तूँबडा पुनः गुणवर्मा को भेंट दिया और वह अपने देश में चला गया ।

अपनी बात समाप्त करते हुए गुणवर्मा ने कहा, 'हे राजन् ! वह गुणवर्मा मैं स्वयं ही हूँ और पिता तथा चाचा के द्वारा किए गये न्यासापहार के दुष्कृत की क्षमा मांगने आया हूं । आप मुझे क्षमा करे ।

गुणवर्मा की इस घटना का वर्णन समाप्त करते हुए राजा ने चंपकमाला को कहा-'तब मैंने उसे क्षमा कर दिया ।' गुणवर्मा यहां से चला गया । उसके चले जाने के बाद मैं चिंतासागर में डूब गया और सोचने लगा **'लोभाकर के पुत्र होने के कारण वह मरणांत कष्ट में से बच गया । सुर राजा का राज्य नष्ट होने पर भी उसके पुत्र विजयचन्द्र ने वह राज्य वापस प्राप्त कर लिया । लेकिन मैं तो पुत्रहीन हूँ, अतः मेरे पश्चात् मेरे राज्य का रक्षण कौन करेगा ? इस प्रकार मेरा कुल नष्ट हो जायेगा । बस, इसी चिंता से हे रानी ! आज मैं उदास हूँ ।'**

महारानी बोली-'स्वामीनाथ ! आपकी चिंता यथार्थ है । पुत्र से युक्त परिवार ही आनंद पाता है किंतु हे स्वामी ! पुत्र की प्राप्ति तो पुण्याधीन है । अतः इस हेतु पुण्य में अभिवृद्धि करनी चाहिये और इष्ट देव की साधना करनी चाहिये ।'

महारानी की बात सुनकर महाराजा की अप्रसन्नता दूर हो गई ।

५. आपत्ति के बादल

'हे प्राणनाथ ! आज मेरा दाहिना नेत्र स्फुरित हो रहा है ।' अत्यंत दु:खी स्वर से चंपकमाला ने कहा ।

देवी को आश्वासन देते हुए राजा वीरधवल ने कहा, 'देवी ! भय मत रखो, तुम्हारा किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा । मेरे होते हुए तुम्हें किसी से भय रखने की आवश्यकता नहीं है । फिर भी यदि कोई तुम्हारा अनिष्ट हो गया तो मैं भी जींदा नहीं रहूंगा ।' इतना कह कर राजा, राज सभा में चले गये ।

इधर चंपकमाला की बेचैनी बढती जा रही थी । उसकी दाहिनी आंख का स्फुरण हो रहा था । उसे न तो महल में आनन्द आ रहा था और न ही क्रीड़ा-भवन में ।

उसकी ऐसी अवस्था देखकर सखियों ने कहा, 'हे देवी ! यदि आपका दिल उदास है तो आओ, हम सब नगर के बाहर उद्यान में घूम आयें । उद्यान के शीतल पवन और हरे-भरे वातावरण से आपका मन प्रफुल्लित हो जायेगा ।'

सखियों को मूक सम्मति देकर महारानी नगर के बाहर उद्यान में टहलने के लिए चली गई । उद्यान के शांत वातावरण में भी महारानी को आनन्द नहीं आया । अत: महारानी की आज्ञा से सखियां पुन: राजमहल में लौट आई । महारानी ने शयन खंड में प्रवेश किया । मात्र एक चतुर दासी को अपने पास रख अन्य सबको विदाई दे दी ।

महारानी पलंग पर लेट गई, परन्तु उसका दाहिना नेत्र अधिकाधिक स्फुरित हो रहा था । बेचैन बनी महारानी ने अपनी दासी को कदली-पत्र लाने के लिए भेजा । थोड़ी देर के बाद दासी कदलीपत्र लेकर आई । किंतु उसने महारानी को शय्या पर निश्चेष्ट पड़ी हुई देखी तो वह अवाक् रह गई । उसने अनुमान किया, **'महारानी की मृत्यु हो गई है ।'** वह हांफती हुई राजा के बैठक खंड की ओर दौड़ी । उसकी आंखों में से आंसुओं की धारा बह रही थी । जोर से रुदन करती हुई वह अत्यंत करुण विलाप करने लगी ।

राजा ने उसका करुण विलाप सुना । वह अपने खंड से बाहर आ गया और बोला-'दासी ! क्या बात है ?'

दासी बोली, 'स्वामीनाथ ! देवी चंपकमाला का बहुत बड़ा अमंगल हो गया है ।'

यह सुनते ही राजा अत्यंत शोकातुर हो गया और बोला-`जल्दी कह ! क्या घटना हुई है ?'

रोती हुई दासी बोली-`स्वामीनाथ ! आज प्रातःकाल से ही महारानी का दाहिना नेत्र स्फुरित हो रहा था । भावी अमंगल की वह आगाही थी, महारानी के मन को बहलाने के लिए हम उन्हें उद्यान में ले गये, किंतु वहां भी महारानी को शांति नहीं मिली । अंत में महारानी की आज्ञा से मैं उनके साथ पुनः राजमहल में आ गई । शय्या पर आराम करते समय उन्होंने अन्य सब दासियों को विसर्जित कर दिया । मात्र मैं ही उनके पास थी । पलंग पर सोते समय उन्होंने मुझे कदलीपत्र लाने के लिए भेज दी । मैं कदली-पत्र लेकर आई । मैंने महारानी को काष्ट की भांति निश्चेष्ट देखा, पता नहीं उन्हें क्या हो गया है ?'

महारानी के अमंगलकारी समाचार सुनकर महाराजा वीरधवल तत्काल मूर्च्छित हो गए । थोड़ी ही देर में राज-कर्मचारी इकट्ठे हो गये । ठंडे जल का सिंचन करने पर महाराजा ने अपने नेत्र खोले । वे कुछ होश में आए और सोचने लगे, अरे भाग्य ! तूने यह क्या कर डाला ? उस देवी के बिना मैं कैसे जीवित रह सकूंगा ? देवी को मारने से पहले तूने मुझे ही क्यों नहीं मार डाला ? हाय देव ! तूने यह क्या कर डाला ? `मैं पापी हूं, अज्ञानी हूँ, उसने तो मुझे पहले ही दाहिने नेत्र के स्फुरण की सूचना दी थी, परन्तु मैंने उस ओर ध्यान नहीं दिया ।'

इस प्रकार राजा विलाप करने लगा । चारों ओर से मंत्री आदि इकट्ठे हो गये । राजा की यह दुर्दशा देख सब शोकातुर हो गये ।

तभी किसी चतुर मंत्री ने राजा को कहा, `राजन् ! आप इतने आकुल क्यों हो रहे हैं ? जरा देवी के खंड में जाकर देखे तो सही, महारानी की क्या हालत है ? शायद वे जीवित भी हो ? कई बार प्राण नाभि में स्थित हो जाते हैं, शरीर चेष्टारहित होने पर भी व्यक्ति जीवित रह सकता है । इसलिये आप चलिये, कुछ उपचार करने से देवी ठीक भी हो सकती है ।'

मंत्री की इस बात को सुनकर महाराजा कुछ शांत हुए । वे महादेवी के खंड की ओर जाने के लिए तैयार हो गये । महारानी के खंड में आते ही राजा ने देखा, `महारानी काष्ट की भांति निश्चेष्ट पड़ी हुई है, उसका श्वास बंद है ।' महारानी को मृत समझकर राजा पुनः मूर्च्छित हो गया ।

मंत्री वर्ग ने मिलकर सोचा, देवी के वियोग से राजा अवश्य ही प्राण छोड़ देंगे । अतः किसी भी प्रकार से राजा को बचाना चाहिये । सभी मंत्री चिंतातुर थे `अब क्या किया जाय ?'

तत्काल सुबुद्धि मंत्री बोला-`इस समय काल-विलंब करना ही श्रेष्ठ उपाय है ।'

परन्तु यहां काल-विलंब कैसे किया जाय ? यह सब से बड़ी समस्या थी ।

सुबुद्धि मंत्री ने कहा-`राजा को इस प्रकार समझाया जाये कि महारानी पर विष का असर हो गया है, अतः उसके प्राण, नाभि में स्थित है, इसलिये वैद्य को बुलाकर महारानी का उपचार करना चाहिये ।

इस प्रकार विचार विमर्श कर सभी मंत्री राजा के पास आ पहुंचे । एक मंत्री ने कहा, `राजन् ! आप चिंता न करे, महारानी जीवित है, विष का असर हो गया है, उनके प्राण नाभि में स्थित हैं । इस हेतु वैद्य को बुलाकर महारानी का उपचार करना चाहिये ।'

महारानी के जीवन की आशा जानकर राजा की अप्रसन्नता दूर हुई । वैद्य तथा मंत्र-तंत्र-वादियों को तत्काल बुलाने के लिए चारों ओर नौकर भेज दिए गए ।

थोड़ी ही देर में सुप्रसिद्ध वैद्य, तथा मंत्र-तंत्र-वादियों का तांता लग गया । महारानी को स्वस्थ करने के लिए सभी ने भरसक प्रयत्न किये, परन्तु किसी को भी वास्तविक सफलता नहीं मिली । इस प्रकार चिकित्सा करते-करते २४ घंटे बीत गये परन्तु महारानी उसी हालत में निश्चेष्ट थी । यह देखकर मंत्रीगण सोचने लगे, अब क्या होगा ? अभी तक हम महारानी को स्वस्थ नहीं कर पाये, अतः राजा महारानी के विरह में कहीं अपने प्राण छोड़ न दे ? ऐसी अवस्था में राज्य की क्या हालत होगी ? पूरी प्रजा अनाथ बन जाएगी ।

इस प्रकार चिंतातुर मंत्रीगण एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, तभी राजा ने उठकर महारानी की ओर देखा और पुनः मूर्छित हो गया । होश में आने पर राजा पुनः शोक करने लगा, `हे देवी ! तू कहां चली गई ? तेरे बिना अब मैं जीवित नहीं रहूँगा । अब यह राजलक्ष्मी मुझे नहीं चाहिये । बस, अब तो मैं भी

तेरी चिता के साथ ही जल कर अपने प्राण त्याग दूँगा ।'

इस प्रकार विलाप करते हुए राजा ने मंत्रीवर्ग को आदेश दिया, `नगर के बाहर गोला नदी के किनारे दो चिता तैयार कर दो । मैं जीवित ही जलकर अपने प्राण त्याग दूँगा ।'

राज-आज्ञा सुनते ही मंत्रीवर्ग चिंता में डूब गया और अत्यंत दुःखी स्वर से बोला-`हे राजन् ! देवयोग से महारानी की मृत्यु हो गई है, वह दुःख भी प्रजा के लिए असहनीय है फिर आप जीवंत ही जीवन का त्याग कर देंगे, तो प्रजा कैसे सहन कर पाएगी ? घाव पर नमक छिड़कने तुल्य आप यह विचार छोड़ दे । आप इस मोह का त्याग कर दो और चिरकाल तक राज्य का पालन करो ।'

राजा ने कहा, `मंत्रीजनों ! आपकी बात सत्य है, लेकिन मैं महारानी के बिना जिन्दा नहीं रह सकता । मैंने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि यदि उसका कोई अनिष्ट होगा तो मैं जीवित नहीं रहूँगा । अतः अब मेरी आज्ञा स्वीकार करो और शीघ्र ही गोला नदी के किनारे दो चिताए तैयार करा दो ।'

मंत्रीगण राजा को समझाने में असमर्थ थे, अतः उन्होंने नगर के बाहर गोला नटी के किनारे दो चिताएं तैयार कराने का आदेश दे दिया । थोड़े ही समय में दो चिताएं तैयार हो गई । महारानी की श्मशान-यात्रा प्रारम्भ हुई । साथ में महाराजा ने भी अग्नि-प्रवेश के लिए प्रयाण कर दिया । सारी प्रजा करुण क्रंदन कर रही थी । चारों ओर अत्यंत उदासी भरा वातावरण था, सभी लोग शोकमग्न थे ।

इस प्रकार महाराजा की जीवंत तथा महारानी की मरणोपरांत श्मशान-यात्रा आगे बढ़ रही थी । धीरे धीरे वह श्मशान यात्रा गोला नदी के तट पर आ गई । महाराजा ने अग्नि-स्नान के पूर्व जल स्नान करना उचित समझा ।

महाराजा ने वस्त्र उतार दिये और जल-स्नान के लिए गोला नदी में उतर गये ।

६. अद्भुत चमत्कार

कई बार आदमी सोचता कुछ और है और प्रकृति को कुछ और ही मंजूर होता है ।

महाराजा जल स्नान कर रहे थे । नदी तीव्र वेग से बह रही थी । अचानक एक मन्त्री की नजर दूर से बहकर आते हुए लंबे काष्ठ पर गिरी । उसने नौकरों को कहा, `सोचा, चिता के लिए लकड़ियां कुछ कम हैं, अतः उस बहते हुए काष्ठ को खींचकर नदी तट पर ले आओ ।

मन्त्री की आज्ञा से शीघ्र ही दो सेवक नदी में कूद पड़े और कुछ ही देर बाद जल प्रवाह में से उस काष्ठ को खींचकर ले आये । काष्ठ बहुत ही लम्बा और सूत के धागों से बंधा हुआ था । उसी समय राजा भी जल स्नान कर उस काष्ठ के पास आ खड़ा हुआ । सोचने लगा, यह काष्ठ बंधा हुआ क्यों है ? उसने काष्ठ के बंधनों को खोला तो प्रतीत हुआ कि यह काष्ठ दो फाड़ के रुप में है ।

धागों के बन्धन टूटते ही मन्त्री ने काष्ठ की ऊपरी फाड़ को हटाया तो वह चकित रह गया । अरे ! यह क्या ? चंपकमाला ! यह इस काष्ठ में कहां से आ गई ? उस काष्ठ-फाड़ में चंपकमाला आराम से सोई हुई थी । उसके गले में एक दिव्य हार था, उसके शरीर पर सुगन्धित पदार्थों का लेप किया हुआ था । उसके मुख मण्डल पर दिव्य तेज था । राजा चम्पकमाला को इस प्रकार की अवस्था में देख राजा आश्चर्यचकित हो गया । वह सोचने लगा, `अभी तो हम चंपकमाला के शव को लेकर आये है और उसके शव को चिता पर रखा है, फिर यह इस काष्ठ-फाड में कहां से आ गई ? राजा ने तुरन्त एक सेवक को आदेश दिया कि `जाओ ! उस चिता पर देखकर आओ, वहां चंपकमाला का शव है या नहीं ?'

सेवक तुरंत ही शव के पास गया । उसने वहां जाकर देखा, `शव आकाश-मार्ग से उड़ा जा रहा है और वह बोल रहा है-`मैं ठगा गया ।' सेवक ने आकर राजा को यह हाल सुनाया तो राजा को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ ।

उसी समय चम्पकमाला ने अपनी आंखें खोली और वह उस फाड़ में से खड़ी हो गई ।

राजा ने पूछा-`देवी ! तूं इस फाड़ में कैसे आ हो गई ?'

महारानी ने भी पूछा-`आप यहां खुले बदन भीगे वस्त्रों में कैसे और ये

प्रजाजन शोकातुर क्यों हैं ? क्या कोई मर गया है ?'

राजा ने कहा-'देवी ! यह सब बाद में बताऊंगा, पहले तू यह बता कि तू इस काष्ठ में कैसे आ गई ?'

महारानी बोली-'यदि आप सब यह जानना ही चाहते हैं तो उस वट वृक्ष के नीचे चले । वहां बैठकर मैं अपनी आपबीती सुनाऊंगी ।'

प्रजाजन महारानी को साक्षात् देखकर खुश हो गए, उनके आनन्द का पार नहीं रहा । परन्तु सभी के मन में बड़ा कुतुहल था कि महारानी इस काष्ठ-फाड़ में कहां से आ गई ? अतः सभी प्रजाजन दौड़कर वट वृक्ष के नीचे चले गये । महाराजा और महारानी भी वहां पहुंचे ।

राजा को नमस्कार कर महारानी ने अपनी आपबीती घटना सुनानी प्रारम्भ की ।

महारानी बोली, 'स्वामीनाथ ! जब से मेरा दाहिना नेत्र स्फुरित हो रहा था, तब से मैं बेचैन थी, मुझे किसी प्रकार की शान्ति नहीं थी, फिर मैं महल से उद्यान में गई । वहां पर भी मुझे शांति नहीं मिली तो मैं पुनः महल में लौट आई और शय्या पर आकर लेट गई । मैंने वेगवती को कदली पत्र लाने का आदेश दिया, वह कदली-पत्र लेने गई तो पीछे से किसी दुष्ट देव ने मेरा अपहरण कर लिया उसने मुझे उठाकर एक पर्वत पर छोड़ दी ।'

'पर्वत अत्यन्त ही भयंकर था । वहां चारों ओर कोई मनुष्य दिखाई नहीं दे रहा था बल्कि सिंह आदि जंगली पशुओं की गर्जनाएं सुनाई दे रही थी । मैं अत्यंत भयभीत हो गई । अंत में साहस कर मैं पर्वत की एक दिशा में आगे बढ़ी । मैंने देखा, 'सामने ही आदिनाथ प्रभु का जिनालय है । आपत्ति में प्रभु ही शरण हैं, मैंने मुक्तकंठ से प्रभु की स्तवना की और प्रभुभक्ति में तल्लीन बन गई ।'

'प्रभु की स्तवना पूर्णकर मैं मन्दिर से बाहर निकली, तभी मेरे पास एक देवी आई और बोली, 'मैं आदिनाथ प्रभु की अधिष्ठायिका देवी हूँ । मेरा नाम चक्रेश्वरी है । तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हूं । इस मलयाचल पर्वत पर रहने से मुझे मलयादेवी भी कहते हैं, तू बड़ी भयभीत है, धैर्य धारण कर और भय का त्याग कर ।'

'मैंने देवी को नमस्कार किया और उससे पूछा, 'हे भगवती, मेरा अपहरण क्यों हुआ है ? स्वजनों के साथ मेरा पुर्नमिलन होगा या नहीं ?'

चक्रेश्वरी बोली, `शुभ्रे ! तुम्हारे इस अपहरण का कारण इस प्रकार है, तुम्हारे पति वीरधवल राजा को वीरपाल नाम का एक दूसरा भाई था । वह किसी भी प्रकार से तुम्हारे पति के राज्य को पाना चाहता था और इसी हेतु वह वीरधवल की हत्या करना चाहता था । एक दिन वीरधवल की हत्या के लिए हथियार सहित उसने राजमहल में प्रवेश किया । उसके आगमन के साथ ही वीरधवल सावधान हो गया । वीरपाल ने वीरधवल पर जोर से प्रहार किया, परन्तु अपनी होशियारी से वीरधवल उस प्रहार से बच गया । तत्पश्चात् वीरधवल ने उस पर प्रहार किया । उस प्रहार से वह भयंकर रुप से घायल हो गया और मर गया । वही वीरपाल मेरे परिवार में यहां भूत बना है । पूर्वभव के वैर का स्मरण कर वह किसी भी प्रकार से वीरधवल को मारना चाहता था, किन्तु वीरधवल का पुण्योदय तीव्र होने से वह सफल न हो सका ।'

अंत में उसने सोचा, `वीरधवल को चंपकमाला पर अत्यन्त राग है, वह रानी के बिना जीवित नहीं रह सकता । अतः यदि रानी को मार दूं तो वह भी मर जाएगा ।' ऐसा विचार कर उसने तुम्हें मारने का प्रयत्न किया, परन्तु तुम्हारे प्रबल पुण्योदय के कारण वह तुम्हें मार न सका । अंत में उसने तुम्हारा अपहरण कर लिया, ताकि वीरधवल तुम्हारे वियोग में मर जाए ।

संसार की यह कैसी विचित्रता है, `जहां राज्य प्राप्ति के लिए एक भाई अपने सगे भाई को भी मारने के लिए तैयार हो जाता है ।' हत्या के ये संस्कार मरने पर भी नष्ट नहीं होते, अगले जन्म में भी साथ चलते है और निमित्त मिलते ही जागृत हो जाते हैं ।

देवी बोली, `तुम्हें शय्या पर अकेली पड़ी देखकर उस दुष्ट देव ने तुम्हारा अपहरण कर लिया और वह तुम्हें उठाकर यहां ले आया ।'

इस प्रकार अपहरण के रहस्य को बताकर देवी ने कहा-`हे शुभ्रे ! तुम्हारी परमात्म-भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हें जो चाहिये, वह मांगो ।'

देवी की यह बात सुनकर मैंने कहा, `हे देवी ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे संतान प्राप्ति का वरदान प्रदान करो ।'

यह सुनकर राजा ने उत्सुकता से कहा-``फिर क्या कहा देवी ने ?''

चंपकमाला बोली, ``देवी ने मुझे वरदान देते हुए कहा, `अल्प समय में ही तूं माता बनेगी और तेरे एक पुत्र और एक पुत्री युगल रुप में उत्पन्न होंगे ।' इतने दिनों तक यह भूत ही तुम्हारी संतति में अवरोध कर रहा था । अब मैं उपद्रव करने वाले उस भूत को रोक दूंगी ।''

यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ । वह बोला-``देवी ! तूने बहुत ही उत्तम वर मांगा है । तुझे बहुत ही अच्छी बुद्धि उत्पन्न हुई । भयंकर आपत्ति में भी तूने मेरे दुःख का विचार किया और उसका निवारण किया । आखिर तुम्हारे बिना मेरे दुःख को टालने वाला है भी कौन ?''

राजा ने प्रश्न किया-``देवी ने तुम्हें और क्या दिया ?''

चंपकमाला ने कहा-``देवी ने मुझे अत्यन्त दुर्लभ **लक्ष्मीपुंज** हार दिया है । इस हार को सदैव कंठ में धारण करने से सब अच्छा होगा ।''

हार को ग्रहण कर मैंने देवी से पूछा-``हे देवी ! मेरा अपहरण कर दुष्ट देव कहाँ चला गया ?''

देवी बोली-``तुझे इस पर्वत पर छोड़कर वह देव चन्द्रावती गया और तुम्हारी शय्या पर तुम्हारा रुप धारण कर शव के रुप में पड़ा है । अचानक तुम्हें मृत समझ कर राजा को जो दुःख हुआ, उसे वही जानता है ।''

मैंने देवी से पूछा, ``मेरे वियोग से पीड़ित मेरे स्वामी का क्या हाल है ? वे मुझे कब मिलेंगे ?''

देवी ने कहा, `सात प्रहर के बाद वियोग से पीड़ित राजा के साथ तुम्हारा मिलन होगा ।'

देवी को ``मैं कुछ और प्रश्न करुं, इसी बीच किसी विद्याधरी का वहां आगमन हो गया और चक्रेश्वरी देवी अन्तर्धान हो गई ।''

उस विद्याधरी ने मुझे अकेली देखकर कहा-``हे शुभ्रे ! तू अकेली कहां से आई है ?''

मैंने अपना संपूर्ण वृत्तान्त विद्याधरी को कह सुनाया ।''

विद्याधरी ने कहा-``मैं तुझे अभी चन्द्रावती पहुंचा देती किन्तु इस पर्वत पर अभी मुझे विद्या सिद्ध करनी है, विद्या-सिद्धि का शुभ मुहूर्त निकट है । यदि मैं इस समय विद्या-सिद्ध नहीं करुंगी तो भविष्य में यह विद्या मुझे सिद्ध नहीं हो सकेगी । फिर भी आपत्ति में पड़ी हुई तुम्हारे ऊपर मैं क्या उपकार करुं ? अभी मेरा पति आयेगा, किन्तु वह बड़ा कामुक है । वह तुम्हारे शील का खण्डन किये बिना नहीं रहेगा । मैं तुम्हारे शील रक्षण की योजना बना देती हूं ।'' इतना कहकर वह विद्याधरी मुझे आकाश मार्ग में उठाकर ले गई और एक नदी किनारे ले आई ।

मैंने सोचा-``क्या यह मुझे नदी में फैंक देगी अथवा अन्य कुछ अनिष्ट करेगी ?'' मैं इसी सोच में थी तभी विद्याधरी ने एक शुष्क काष्ठ का बड़ा टुकड़ा लिया और विद्या बल से उसकी दो फाड़े कर दी । फिर उसमें एक मनुष्य आसानी से सो सके, ऐसी जगह बना दी । गोशीर्ष चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से मेरे शरीर पर लेप कर दिया और मुझे उस काष्ठ की फाड़ में सुलाकर दूसरी फाड़ मेरे ऊपर रख दी । इसके बाद क्या हुआ, वह मैं नहीं जानती । मैं तो गर्भावास की भांति उस काष्ठ के भीतर सोती रही । अब पुण्ययोग से आपका मिलन हुआ है ।

चम्पकमाला का वृत्तान्त सुनकर राजा ने कहा-``हे देवी ! तेरे विरह में मैं भी प्राण त्याग करने के लिए गोला नदी के किनारे आया था, परन्तु भाग्य योग से तेरा मिलन हो गया ।''

देवी की अपूर्ण बात को पूर्ण करते हुए सुबुद्धि मन्त्री बोला-``हे देवी ! विद्याधरी ने अपने पति के भय से तुम्हें इस काष्ठ संपुट में बन्द कर दिया और उसे डोरी से बांध कर नदी में बहा दिया । हमारे पुण्य योग से वह काष्ठ तैरता हुआ यहां आ गया और आपसे पुनर्मिलन हो गया । चक्रेश्वरी देवी का वचन सत्य सिद्ध हो गया । ठीक, सात प्रहर के बाद राजा से आपका मिलन हुआ ।

राजा ने कहा, **``हे देवी ! जो होता है वह अच्छे के लिए ही होता है ।** यदि तुम्हारा अपहरण नहीं हुआ होता तो चक्रेश्वरी देवी का मिलन नहीं हो पाता और पुत्र प्राप्ति का वरदान और यह लक्ष्मीपुंज हार भी प्राप्त नहीं हो पाता ।' राजा ने वह काष्ठसंपुट भट्टारिका मन्दिर में रखवा दिया ।''

दोपहर का समय हो जाने से नगरजनों ने नगर प्रयाण हेतु गीत गान प्रारंभ किया । चन्द्रावती की प्रजा में आनंद छा गया । शोकातुर वातावरण हर्ष से आह्लादित हो चुका था । आनन्द के कारण सभी प्रजाजन भूख-प्यास को भूल गये थे । इस प्रकार खुश हुए प्रजाजनों ने नगर में प्रवेश किया ।

श्मशान यात्रा स्वागत यात्रा में बदल गई । संपूर्ण आकाश मण्डल जय-जयकार के नादों से गूंज उठा । रानी के साथ हाथी पर आरुढ़ होकर राजा ने नगर प्रवेश किया । वह राजमहल में पहुंच गया ।

देवी वरदान के प्रभाव से चंपकमाला गर्भवती बनी । रानी हर्ष और उल्लास के साथ गर्भ को वहन करने लगी । वह गर्भकाल के समस्त नियमों का समुचित पालन करती थी । गर्भ के प्रभाव से महारानी को अनेक शुभ-दोहद पैदा

हुए । महाराजा ने महारानी के सभी दोहदों को पूर्ण किया । नौ मास के गर्भकाल को पूर्णकर एक शुभ दिन, रात्रि के अन्तिम प्रहर में महारानी चंपकमाला ने एक पुत्र-पुत्री के युगल को सुखपूर्वक जन्म दिया । युगल जन्म के साथ ही दासी वेगवती महाराजा के पास दौड़कर पहुंच गई । युगल के जन्म के समाचार सुनकर महाराजा के आनन्द का पार नहीं रहा । उन्होंने तुरन्त स्वर्ण का हार दासी को दिया, जिससे उसका दारिद्र्य सदा के लिए दूर हो गया । प्रातःकाल होते ही नगर में चारों ओर युगल जन्म के समाचार फैल गए । सभी प्रजाजन ये समाचार सुनकर खुश हो गए और राजा को बधाई देने लगे । दूर सुदूर के मित्र राजा भी महाराजा वीरधवल को बधाई का शुभ संदेश और अनेकविध उपहार देने के लिए आने लगे ।

संपूर्ण नगर में पुत्र-पुत्री के जन्म का महोत्सव किया गया । दस दिन तक सभी प्रजाजन आनन्द कल्लोल करते रहे । सभी राजपथ स्वच्छ कर दिए गए । स्थान-स्थान पर अनेक नाटक मण्डलियां अपनी कलाओं का प्रदर्शन करने लगी । बारहवें दिन वृद्ध स्त्रियों की सम्मति से महाराजा ने अपने पुत्र-पुत्री का नामकरण किया । देवी का वरदान होने से देवी के नामानुसार पुत्र का नाम रखा गया **''मलयकेतु''** और पुत्री का नाम रखा गया **''मलयासुन्दरी''** । दोनों बालक अत्यन्त रुपवान् एवं शान्त स्वभाव के थे । उनका लालन-पालन बड़े अच्छे ढंग से किया गया । धीरे धीरे दोनों बड़े होने लगे । आठ वर्ष की अवस्था में उन दोनों को शिक्षा के लिए कुशल पण्डितों के पास भेजा गया । तीव्र क्षयोपशम के कारण वे दोनों शीघ्र ही विविध कलाओं और विद्याओं में पारंगत हो गये ।

मलयकेतु रुप-लावण्य में साक्षात् कामदेव के समान था । जिस मार्ग से वह निकलता था, उस मार्ग पर हवेलियों में स्थित युवतियां उसके रुप पर मोहित हो जाती थी ।

रुप और लावण्य के साथ मलयकेतु बुद्धि और कला का भी भंडार था । इधर मलयासुन्दरी भी रुप और लावण्य में कुछ कम नहीं थी । उसकी सुन्दरता रति को भी मात करती थी । उसका स्वभाव अत्यन्त ही मृदु था । वह अपनी सखियों के साथ कभी कभी उद्यान में भ्रमण के लिए जाती थी, तो कभी राजमहल के गवाक्ष में बैठकर नगर के दृश्य का विहंगावलोकन करती थी । उसकी देहलता अत्यन्त सुकोमल और कांतिमान थी ।

७. गुटिका प्रभाव

पृथ्वीस्थानपुर नाम की नगरी में **सुरपाल** राजा राज्य करते थे, जो अत्यन्त ही मेधावी और पराक्रमी थे। उनकी पट्टरानी का नाम **पद्मावती** था। महारानी ने एक शुभ दिन पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम **महाबल** रखा गया। महाबल वास्तव में महाबली था। वह सिंह की भांति अत्यन्त नीडर और तेजस्वी था। बाल्यावस्था में ही उसने अनेकविध कलाओं का शिक्षण प्राप्त कर लिया था।

वह यौवन के प्रांगण में प्रवेश कर चुका था। एक दिन नगर के बाहर उद्यान में किसी योगी संन्यासी का आगमन हुआ। महाबलकुमार भी उस समय उस उद्यान में पहुंच गया। संन्यासी किसी साधना के लिए प्रयत्नशील था, किन्तु उत्तर-साधक के बिना उसकी साधना सिद्ध नहीं हो पा रही थी। उसने आगंतुक महाबल के तेजस्वी चेहरे को देखा और उसकी योग्यता को भांप लिया। संन्यासी ने महाबल को उत्तर-साधक बनने के लिए प्रेरित किया। महाबल ने संन्यासी की बात स्वीकार कर ली।

शुभ मुहूर्त में विद्या-साधना प्रारम्भ हुई। पुण्य योग से अल्प समय में ही उस संन्यासी ने अपनी विद्या सिद्ध कर ली। उसने महाबलकुमार का अत्यन्त ही आभार माना।

उसने कुमार को एक गुटिका देते हुए कहा-``हे कुमार ! **इस गुटिका को मुंह में रखने से तुम मनचाहा रुप धारण कर सकोगे और गुटिका मुंह में से निकालने पर पुनः पूर्ववत् अवस्था प्राप्त कर सकोगे।''**

अनिच्छा होते हुए भी कुमार ने वह गुटिका ग्रहण की। वह उस गुटिका को हर समय अपने पास रखने लगा।

चन्द्रावती के राजा वीरधवल और पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल की अच्छी मैत्री थी। आपत्ति के समय वे एक दूसरे की सहायता करते थे। उन दोनों के बीच गाढ़ प्रेम था। एक दिन सुरपाल राजा ने अपने मंत्री को चन्द्रावती भेजना चाहा। राजा की आज्ञा स्वीकार कर मंत्री ने चन्द्रावती गमन की तैयारियां आरम्भ कर दी।

महाबलकुमार को इस बात का पता चला। उसने अपने पिता से कहा-``मैं भी देशाटन के लिए चन्द्रावती जाऊंगा।''

राजा ने कहा-``राजकुमार के रुप में तुम्हारा वहां जाना उचित नहीं है।

अब तुम यौवनावस्था को प्राप्त हो चुके हो, अतः विशेष आमन्त्रण के बिना तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं है ।''

कुमार ने कहा-``मुझे देशाटन की बहुत इच्छा है, यदि आप राजकुमार के रुप में मेरा वहां जाना ठीक नहीं समझते तो क्या मैं अन्य रुप धारण कर वहां चला जाऊं ?''

पुत्र की अत्यन्त उत्सुकता देखकर सुरपाल राजा ने उसे जाने की अनुमति दे दी । इसके साथ ही उसने मंत्री को कह दिया कि वहां कुमार का वास्तविक परिचय मत देना । मंत्री ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की और राजकुमार को साथ लेकर शुभ मुहूर्त में चन्द्रावती के लिये प्रस्थान कर दिया । चार दिन की सतत लम्बी यात्रा के बाद मंत्री ने चन्द्रावती में प्रवेश किया ।

मंत्री ने आदरपूर्वक महाराजा वीरधवल के आगे महाराजा सुरपाल द्वारा भेजा गया पत्र एवं भेंट प्रस्तुत की ।

वीरधवल ने शांत चित्त से अपने मित्र का पत्र पढा और मुस्कराते हुए पूछा-``मंत्रीवर ! महाराजा सुरपाल कुशल हैं न ?''

मंत्री ने कहा-``ईश्वर की कृपा और आपके सौहार्दपूर्ण सद्‌भाव से महाराजा अत्यंत कुशल और प्रसन्नचित्त हैं । उन्होंने आपकी कुशलता पूछी है ।'' वीरधवल के महामंत्री ने तत्काल आगंतुक अतिथियों को आसन प्रदान किया । मंत्रीश्वर ने आसन ग्रहण किया, पास ही गुप्त वेष में राजकुमार महाबल भी बैठ गया ।

मंत्री ने अपने आगमन का प्रयोजन कह सुनाया । राजा ने अपने मित्र को हर कार्य में सहायता देने का आश्वासन दिया । अचानक महाराजा वीरधवल की नजर महाबल पर पड़ी । उसके दिव्य तेजस्वी चेहरे को देखकर वीरधवल ने सोचा-``अहो ! यह कामदेव के समान अत्यन्त तेजस्वी युवक कौन है ? मेरी पुत्री मलया यौवन में प्रवेश कर चुकी है । यदि यह सुरपाल का पुत्र हो तो इसके साथ अपनी पुत्री का संबन्ध स्थापित कर मैं पुत्री के भार से मुक्त बन सकता हूँ ।''

सोचकर वीरधवल राजा ने उत्सुकता से कहा-``हे मंत्रीश्वर ! तुम्हारे पास बैठा हुआ यह कुमार कौन है ?''

राजा की बात सुनते ही मंत्री ने कहा-``राजन् ! यह तो मेरा लघु बन्धु है ।''

सुनते ही राजा की कल्पना का महल टूट गया । उसने अपने मन में सोचा, ``यदि यह मन्त्री का भाई है, तो इसके साथ राजकुमारी का सम्बन्ध

कैसे हो सकता है ?''

इस प्रकार थोडे ही समय में उनका वार्ता-विनोद समाप्त हो गया। मंत्रीश्वर और राजा वीरधवल अपने आवास-स्थान पर आ गये।

महाराजा वीरधवल ने आगंतुक अतिथियों के लिए भोजन आदि की सुन्दर व्यवस्था की थी। मन्त्रीश्वर राजकार्य को पूर्ण करने में दो दिन तक अति व्यस्त रहे। इस समय दरम्यान राजकुमार महाबल भी नगर के दृश्यों को देखने लगा। महाबलकुमार इस नगरी के वन-उपवन तथा राजमार्गों की सुन्दरता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। चन्द्रावती के जिन मन्दिरों की शोभा निराली थी। जिन मन्दिर के चारों ओर विशाल परकोटा था। विविध कलाकृतियों से अलंकृत मन्दिरों की शोभा, दर्शक के मन को खींच लेती थी।

एक दिन संध्या समय महाबलकुमार घूमता हुआ राजमहल के पृष्ट भाग में जा पहुंचा। यह तीन मंजिला विशाल गगन-चुंबी राजमहल, मानो देवलोक के दिव्यमहलों से स्पर्धा कर रहा था। राजकुमार मंद-मंद गति से राजमहल की शोभा का निरीक्षण करता हुआ आगे बढ़ रहा था। समय अनुकूल था। पवन भी मंद गति से बह रहा था। वातावरण अत्यन्त शांत था। अचानक महाबल ने राजमहल के ऊपरी खण्ड के गवाक्ष में खड़ी राजकन्या को देखा, जिसे देखते ही वह मूर्तिमंत हो गया और गहरे चिन्तन में डूब गया।

उसने सोचा-``**अरे ! यह कोई देव-कन्या है ? साक्षात् रति की अवतार है ? कोई अप्सरा है ? अथवा देवलोक से भ्रष्ट हुई मानव कन्या है ?**

गवाक्ष में खड़ी हुई कन्या और कोई नहीं किंतु मलयासुन्दरी थी। उसने भी कुमार की ओर देखा और वह मन्त्र मुग्ध हो गई। मलयासुन्दरी के हृदय पट्ट पर उस युवान की छबि अंकित हो गई। राजसभा के प्रांगण में आज तक उसने अनेक राजकुमारों को देखा था, किंतु किसी के प्रति उसके हृदय में राग का अंकुर प्रस्फुटित नहीं हुआ था। आज तक वह किसी राजकुमार के रुप को गौर से देखने में कतराती थी। उसे ऐसा करने में लज्जा का अनुभव होता था, किन्तु आज इस कुमार को देखने के साथ ही उसके हृदय में प्रणय का अंकुर फूट गया। उस कुमार के मनोहर रुप और लावण्य को देखकर उसके मन में तीव्र आकर्षण पैदा हो गया। वह सोचने लगी-``अरे ! कामदेव के साक्षात् अवतार तुल्य यह कुमार कौन है ? जिसे देखते ही मुझे प्रेम पैदा हो गया ?''

मलयासुन्दरी के हृदय में उस कुमार का परिचय प्राप्त करने की तीव्र उत्सुकता पैदा हुई, परन्तु उसकी वाणी मूक बन चुकी थी। उसका चंचल हृदय

स्तंभित हो चुका था। क्या उपाय किया जाय ? केवल यही एक प्रश्न उसके मन में गुंज रहा था। उसने पुनः महाबल पर दृष्टि डाली। महाबल ने भी मलया की ओर देखा और उन दोनों का हृदय एक दूसरे से बिंध गया। दूसरे ही क्षण मलया उपाय की खोज में अन्दर चली गई।

महाबल तो मलया के रुप-दर्शन का अमीपान कर रहा था। इस दर्शन में वह अपनी सूझ-बूझ खो बैठा था। अचानक मलया के अदृश्य हो जाने से उस पर मानों वज्र टूट पड़ा। वह अत्यन्त ही व्याकुल हो गया और सोचने लगा- 'क्या इस रूपसुन्दरी के पुनः दर्शन नहीं होंगें ?' प्रतिक्षण महाबल की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी, ग्रीष्म ऋतु में विराट् मरूभूमि में शीतल घटादार वृक्ष मिलने पर एक पथिक को जैसी शांति मिलती है, वैसी ही परम शांति का अनुभव महाबल ने तब किया, जब उसने पुनः मलया को अपनी नजरों से देखा।

अचानक मलया गवाक्ष के निकट आई और उसने एक पत्र ठीक महाबल के पास फेंक दिया। पवन ने दूत का काम किया। वह पत्र महाबल के चरणों के पास आ गिरा। महाबल ने पत्र उठाया और चन्द्रमा के प्रकाश में उसने वह पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था

कोऽसि त्वं, तव किं नाम, क्व वास्तव्योऽसि सुन्दर !।
कथय त्वयका जहे, मनो मे क्षिपता दृशम् ॥
अहं तु वीरधवल-भूपतेस्तनया कनी।
त्वदेकहृदया वर्ते नाम्ना मलयसुन्दरी ॥

"हे सुन्दर पुरुष ! आप कौन हो ? आपका नाम क्या है ? आप कहां के रहने वाले हो ? इन प्रश्नों का मुझे जवाब दो। मुझ पर दृष्टि डाल कर आपने मेरे मन को हर लिया है। मैं वीरधवल महाराजा की कुमारी कन्या हूँ। आपके हृदय के साथ मेरा हृदय मिल गया है। मेरा नाम मलयासुन्दरी है।"

इस पत्र को पढ़कर महाबल का मन-मयूर खुशी से झूम उठा। उसने सोचा, 'यह रुपवती कन्या मुझे हृदय से चाह रही है अतः मुझे अवश्य ही इसके प्रश्नों का जवाब देना चाहिये।' इस प्रकार महाबल विचार सागर में डूबा हुआ था, तभी अचानक पृथ्वीस्थानपुर का मंत्री, राजकुमार को खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचा।

कुमार को स्थिर खड़ा देखकर कहने लगा-"हे राजकुमार ! आप यहां हो ? हम तो आपकी चारों ओर खोज कर रहे थे, भोजन का समय हो चुका है,

संध्या ढलने आई है और कल ही हमको अपने नगर की ओर प्रस्थान करना है। चलो ! आवास की ओर ! जल्दी चलें।''

महाबल ने सोचा, 'यह तो रंग में भंग पड़ गया, राजकन्या से मिलने की मेरी योजना भंग हो गई। अब क्या किया जाय ?' विचार कर उसने सावधान होकर कहा-``मंत्रीश्वर ! राजमहल के उपवन की शोभा ने मेरे हृदय को मोह लिया था और मैं इसे देख रहा था। अच्छा ! अब अपने आवास की ओर चलते है।''

बस ! राजकुमार महाबल, मंत्रीश्वर के साथ अपने निवास पर आ गया।

आज अन्तिम भोज था, भोजन की व्यवस्था महाराजा वीरधवल की ओर से थी। विविध जाति के सुन्दर मिष्ठान्न बने हुए थे। सभी आनन्द के साथ भोजन कर रहे थे, परन्तु महाबल के चेहरे पर कोई प्रसन्नता नहीं थी। सभी को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों महाबल विचारों की गहरी खाई में डूबा हुआ है।

आखिर मन्त्रीश्वर ने कहा, ``कुमार ! किन विचारों में खोए हुए हो ?''

कुमार ने कहा, ``कुछ नहीं ! ऐसे ही नगर के दृश्यों के विचारों में डूब गया था।''

परन्तु ये सब बहाने थे, वास्तव में कुमार मलया के विचार में ऐसा डूब गया था कि उसे पता ही नहीं चला, उसने क्या खाया और क्या नहीं खाया ? मलया के रुप दर्शन में जिस तृप्ति का वह अनुभव कर रहा था, वह तृप्ति उसे भोजन से नहीं मिल रही थी। वह इसी विचार में था कि किसी बहाने, मैं यहां से निकल जाऊं और मलया के प्रश्नों का जवाब देकर आऊं। वह सोच रहा था कि **मलया मात्र रुप और लावण्य की मूर्ति ही नहीं हैं, वह बुद्धिमान भी है। उसने अपनी बुद्धिमत्ता से अपना परिचय दे दिया। क्या मैं उसे अपना परिचय दिये बिना यहां से चला जाऊं ?**

मन्त्री ने अपने साथीजनों को सूचित किया, 'कल हमें प्रातःकाल में यहां से प्रयाण करना है अतः आज जल्दी सो जायें।' कुमार ने भी उस बात में हां भर दी। सभी लोग रात्रि के प्रथम प्रहर में ही सो गये।

महाबलकुमार को नींद कहां ? उसका मन तो कल्पना की पांखों से गगन में मंडरा रहा था। रात्रि का एक प्रहर व्यतीत हुआ। आकाश में चन्द्रमा

खिल उठा था । आकाश में अनगिनत तारे टिमटिमा रहे थे । चारों ओर नीरव शान्ति थी । कुमार ने देखा, 'सभी साथी निद्राधीन हैं ।' वह बिस्तर से खडा हुआ और अवसर देखकर अपने आवास से निकल गया । वह क्रमशः आगे बढने लगा ।

कुमार राजभवन के पृष्ट भाग में जा पहुंचा । उसने देखा, द्वारपाल आदि निद्राधीन हैं । चारों ओर शांत वातावरण है । किसी भी प्रकार की मानव ध्वनि सुनाई नहीं दे रही है । महाबल के मन में मलयासुन्दरी को मिलने की तीव्र उत्कण्ठा थी और वह भी मात्र उसके प्रश्नों का जवाब देने की । महाबल-कुमार एक सात्त्विक और पवित्र पुरुष था, यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने पर भी उसके हृदय में किसी प्रकार की उन्मत्तता नहीं थी ।

महाबलकुमार ने देखा, 'राजमहल के पीछे एक आम्र वृक्ष महल के झरोखे तक फैला हुआ है । वृक्ष की डाल पर से झरोखे में कूदा जा सकता है और वहां से मलया के खण्ड में जाया जा सकता है ।' बस ! परमात्मा का नाम स्मरण कर वह वृक्ष पर चढ गया और एक छलांग लगाकर राजमहल के झरोखे में पहुंच गया । राजमहल की यह दूसरी मंजिल थी । मलयासुन्दरी का आवास तीसरी मंजिल पर था । दूसरी मंजिल पर महारानी कनकवती का आवास था । कनकवती यौवन के अर्द्ध मार्ग को पार कर चुकी थी, उसकी उम्र लगभग 40 वर्ष होगी, फिर भी वह अत्यन्त रुपवान् थी । रुप के साथ ही वह अत्यन्त कामी भी थी । महाराजा वीरधवल के दो मुख्य रानियां थी, चंपकमाला और कनकवती । चंपकमाला के प्रति महाराजा के हृदय में अधिक प्रेम था । वे कनकवती के खंड में कभी कभी आते थे । रानी कनकवती निःसंतान थी । उसके हृदय में चंपक-माला और उसकी सन्तान के प्रति ईर्ष्या की आग सुलगी हुई थी । वह कभी भी चंपकमाला के उत्कर्ष की बात सहन नहीं कर पाती थी । **ईर्ष्या के तीव्र ज्वर से वह सदा संतप्त रहती थी । एक ओर ईर्ष्या का ज्वर, और दूसरी ओर काम का ज्वर उसकी तेजस्विता को नष्ट कर रहा था ।**

ज्योंहि महाबलकुमार वृक्ष पर से कूदा, उसकी आवाज से कनकवती जाग गई । उसका कक्ष पास में ही था । दीपक की ज्योति उसके शयन खण्ड को प्रकाशित कर रही थी ।

अचानक महाबलकुमार उस ओर आगे बढ़ा । उसने सोचा, शायद यही मलया का खण्ड होगा । ज्योंहि महाबलकुमार कनकवती के खण्ड के द्वार पर आया, त्योंहि दीपक के प्रकाश में कनकवती ने उसके चेहरे को देख लिया ।

महाबलकुमार के दिव्य रुप, तेजस्वी नयन युगल, बलिष्ठ काया और नव-यौवन वय को देखकर कनकवती की देहलता कामाग्नि से भड़क उठी। उसके अंग प्रत्यंग में काम का आवेश फैल गया।

उसने सोचा, `अरे ! यह कौन है ? कोई गंधर्व देव तो नहीं है ? कामदेव से भी इसकी सुन्दरता बढकर है। यदि यह मुझ पर प्रसन्न हो जाय तो।'

इस प्रकार विचार कर वह मधुर-स्वर से बोली-``आओ ! आओ ! आपका स्वागत है, मेरी आशा के पूरक कुमार ! तुम्हारे यौवन का मैं स्वागत करती हूँ।''

इस शब्द-ध्वनि को सुनते ही महाबल अवाक् रह गया। वह बिल्कुल निरुत्तुर हो गया। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल पाया। वह विचार में पड़ गया कि यह अबला कौन है ? यह मलया तो नहीं हैं, क्योंकि इसका शरीर ही कह रहा है क़ि यह परिणिता स्त्री है। यह कोई राजरानी अथवा मलया की सखी तो नहीं है ?

कुमार को विचार-मग्न देख अत्यन्त उन्मत्त बनी हुई कनकवती बोली-``अरे कुमार ! किस विचार में डूब गये हो ? तुम्हारे यौवन पर मैं मुग्ध हूँ।''

महाबल ने सोचा, `यह कैसी आपत्ति आ पड़ी ! मैं किसी दुष्ट विचार से यहां नहीं आया हूँ, मैं तो मात्र मलया के प्रश्नों का जवाब देने आया हूँ, मलया अभी कुमारी है, परन्तु उसके माता-पिता की सम्मति बिना मैं उसे अपनी नहीं बना सकता। अतः **हर स्त्री के प्रति निर्मल दृष्टि रखना मेरा परम कर्तव्य है।** अब मैं क्या करुं ? यह स्त्री अत्यन्त कामातुर बनी हुई है। फिर भी मुझे युक्ति से काम लेना होगा।

ऐसा सोच कर महाबलकुमार ने कहा-``देवी ! मुझे क्षमा करो। मैं किसी अन्य काम के लिए आया हूँ, जब तक वह काम नहीं हो जाय, तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी, अतः पहले मुझे अपना कार्य करने को।''

कनकवती ने देखा, ``अवसर हाथ से चला न जाये, अतः उसने सोचकर कहा-``आप कहां जाना चाहते हैं ?''

कुमार ने कहा,-``मैं राजकन्या को एक संदेश पहुंचाने आया हूँ।''

कनकवती बोल उठी-``क्या मलया को ?''

महाबल ने कहा-``हां ! उसे संदेश देने के बाद, मैं यहां आ सकता हूँ।''

सुनकर कनकवती खुश हो गई। महाबल के वाग्जाल में वह लुब्ध बन

गई ।

उसने कहा, `तो चलो मेरे पीछे-पीछे, मैं तुम्हें मलयासुन्दरी के खण्ड में पहुंचा देती हूँ ।' इतना कहकर रानी आगे आगे चलने चली और महाबल-कुमार उसका अनुसरण करने लगा । तीसरी मंजिल की सीढियों को पार कर कनकवती ने ईशारा किया, `वह देखो, ठीक सामने मलया का खण्ड है ।' इतना कहकर कनकवती पीछे मुड़ गई । महाबलकुमार द्रुत गति से मलया के खण्ड की ओर आगे बढ़ने लगा । मलया का खण्ड शून्य था । एक दीपक अपनी ज्योति से खण्ड को जगमगा रहा था । फूलसी सुकोमल शय्या खाली पड़ी हुई थी ।

इधर मलयासुन्दरी कुमार की प्रतीक्षा में झरोखे से दूर-सुदूर तक दृष्टि डाले बैठी थी । उसने महाबलकुमार पर एक पत्र डाला था । उस पत्र को पढ़ने के बाद किसी व्यक्ति के साथ महाबलकुमार वहां से चला गया था, तभी से मलयासुन्दरी अत्यन्त चिंतित थी । उसके हृदय में यही चिंता थी, `क्या अब उसे कुमार के दर्शन नहीं होंगे ?' इसी चिंता में वह कुमार के पुनःआगमन की प्रतीक्षा कर रही थी । रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था, किन्तु अभी तक मलया अपनी दृष्टि को उसी राजमार्ग पर लगाई हुई थी ।

मलया के खण्ड का द्वार बन्द था, महाबल ने पैर से ठोकर लगाई । तत्काल दरवाजा खुल गया, किन्तु मलया वहां नहीं थी । महाबल ने दरवाजे में प्रवेश किया और धीरे से पुनः दरवाजा बन्द कर दिया । दरवाजे के खोलने और बन्द करने की ध्वनि ने मलया की ध्यान धारा को खण्डित कर दिया ।

खण्ड में प्रवेश करते हुए वह बोल उठी ``कौन ?''

आवाज में बड़ी कोमलता थी । `यही वह सुन्दरी है' ऐसा सोचकर कुमार ने कहा, ``मैं तुम्हारे प्रश्नों का जवाब देने के लिये आया हूँ । यह सुनते ही मलया का रोम-रोम खिल उठा ।''

मलया बोली-``मैं आपका स्वागत करती हूँ'', इतना कहकर मलया ने कुमार को आसन प्रदान किया । कुमार ने प्रेम से आसन ग्रहण किया ।

इधर कनकवती जो महाबल को ईशारा कर पीछे मुड़ गई थी, महाबल-कुमार के खण्ड में प्रवेश करने के बाद पुनः मलया के खंड के समीप आ गई और उन दोनों की बातें सुनने के लिये दरवाजे के निकट कान देकर बैठ गई ।

महाबल ने अपना आसन ग्रहण किया और मलयासुन्दरी कुमार के सामने नम्र बन खड़ी रही । मलयासुन्दरी ने द्वार पर सांकल चढ़ा दी ।

महाबल,`कुमारी ! तुम्हारे दर्शन के साथ ही मेरे हृदय में प्रेम पैदा हो गया अतः तुम्हारे द्वारा अपना परिचय देने के बाद तुम्हारे पूछे प्रश्नों का जवाब देना मेरा कर्तव्य था, इसलिए मैं अपना परिचय देने के लिये यहां आया हूँ ।'

मलया-``आपका परिचय...।''

महाबल-``पृथ्वीस्थानपुर के महाराजा **सुरपाल** मेरे पिताश्री हैं और महारानी **पद्मावती** मेरी माता हैं और मैं उनका पुत्र हूँ **महाबल** !''

नाम सुनते ही मलया बोल उठी-``ओहो ! आप है महाबल ? आपके रुप लावण्य और तेजस्वी प्रतिभा के बारे में तो मैंने बहुत दिनों पहले सुना था, किन्तु प्रत्यक्ष दर्शन तो...।''

महाबल, ``कुमारी ! यह तो जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध मुझे यहां खींच लाया है ।''

मलया, ``आपके दर्शन कर मैं अत्यन्त कृतार्थ बनी हूँ । आपके दर्शन के साथ ही मेरे हृदय में स्नेह की उर्मियां उमड़ पड़ी हैं । अतः मैं अपना सम्पूर्ण जीवन आपके चरणों में समर्पित करती हूँ । **नारी के जीवन में अपने हृदय की भावनाओं का समर्पण एक ही बार होता है और मैंने आपको यह अपना जीवन समर्पित कर दिया है ।''**

महाबल, ``तुम आसन ग्रहण करो ।''

मलया, ``आपके प्रथम दर्शन के बाद जब आप चले गये, तब से मैं आपके पुनरागमन की प्रतीक्षा कर रही थी, मैं यही सोच रही थी कि आप नीचे आकर मुझे संकेत करोगे और फिर रस्सी के बल ऊपर आओगे । लेकिन आप अन्य मार्ग से सुरक्षित आ गये ।''

महाबल, ``प्रिये ! प्रभु कृपा से मैं यहां सुरक्षित आ पहुंचा हूँ । अब मैं जाता हूँ । क्योंकि मुझे प्रयाण की तैयारी करनी है ।''

मलया, ``कैसी तैयारी ? कहाँ जाने की तैयारी ?''

महाबल, ``कल ही पृथ्वीस्थानपुर जाना है । मैं तो यहां गुप्त रुप से आया हूँ ।''

मलया की आंखें अश्रुभीनी हो गई ।

वह बोली, ``**प्रियतम ! आप यहां से नहीं जा सकते हैं । आपके वियोग को मैं क्षण भर भी सहन करने में समर्थ नहीं हूँ, आपके जाने से मेरा हृदय टूट जायेगा । मैं जीवित नहीं रह सकूँगी ।''**

महाबल ने आश्वासन देते हुए कहा, ``**प्रिये ! तुम इतनी अधीर क्यों बन रही हो, धैर्य तो जीवन का महान बल है । धीरज का फल मीठा होता है ।''** इतना कहकर महाबल आसन से खड़ा हो गया ।''

``प्रियतम ! इतनी जल्दी मत करो ! मुझे एक बात कहनी है । मैं आपको हृदय से वर चुकी हूँ ।''

इतना कहकर अपने गले में से लक्ष्मीपुंज हार निकालकर महाबल के गले में डालती हुई मलया बोली, ``यह लक्ष्मीपुंज हार देवता अधिष्ठित है । इसके बहाने मैं यह वरमाला आपके गले में डाल रही हूँ ।'' इतना कहकर मलयासुन्दरी ने महाबल के चरणों में सिर झुका दिया ।

फिर वह आगे चलकर बोली-``प्राणेश ! अब गान्धर्व विवाह से मुझे स्वीकार करो, मैं आपके साथ ही चलूंगी ।''

महाबल ने स्मित स्वर से कहा, ``प्रिये ! तुमने अपना जीवन मुझे समर्पित किया है, इससे मैं भी अपने आपको धन्य मानता हूँ । परंतु इस समय तुझे साथ ले चलना उचित नहीं है । तुम्हारे माता-पिता के आशीर्वाद पूर्वक मैं तुझे यहां से ले जाऊंगा । तू निश्चिन्त रह, सद्‌भाग्य से यह काम शीघ्र ही हो जायेगा, क्योंकि तेरे पिता और मेरे पिता के बीच प्रगाढ़ स्नेह सम्बन्ध है ।''

दरवाजे के बाहर कान देकर खड़ी कनकवती ने यह सब वार्तालाप सुना और वह क्रोधाग्नि से जल उठी ।

यह दुष्ट कुमार मुझे विपरीत बात कहकर मलया के प्रेम में पड़ा है और यह दुष्ट राक्षसी भी कैसी है जो उसके प्रेम में मुग्ध बनी है । अब इनके इस प्रणय का भण्डाफोड़ कर देती हूँ । इस प्रकार विचारकर उसने मलया के खण्ड के दरवाजे पर बाहर से ताला लगा दिया और अट्टहास करके बोली, ``दुष्ट कुमार ! अब तेरे माया जाल का भण्डाफोड़ होगा ।'' इतना कहकर वह वहां से चली गई ।

कनकवती के अट्टहास को सुनते ही मलयासुन्दरी चमक उठी । वह

थर-थर काँपने लगी ।

मलया ने कहा-``प्रियतम ! यह मेरी अपर माता कनकवती है । यह अत्यन्त ही ईर्ष्यालु और दुष्टा है ।''

``अरे ! यह तो वही स्त्री होगी जो मुझे यहां आते समय बीच मार्ग में मिली थी । दूसरी मंजिल पर ज्योंही मैं वृक्ष की डाल से कूदा, त्यों ही सर्वप्रथम मेरी उस स्त्री से मुलाकात हुई थी । वह निर्लज्ज होकर मुझसे काम की प्रार्थना कर रही थी । लेकिन मैं आश्वासन देकर उसके जाल से निकल गया, उसी की यह आवाज लगती है ।'' कुमार ने कहा ।

मलया बोली, ``प्रियतम ! पता नहीं, अब क्या होगा ? महाराजा के पास जाकर आपकी हत्या भी करा सकती है । ओहों ! मैं कैसी मंदभागिनी हूँ, `आपके प्रथम दर्शन से ही आपके ऊपर आपत्ति लाने वाली बनी ? मैंने कैसा दुष्कर्म किया होगा ? जिसका फल मुझे अब भोगना पडेगा ।''

कुमार ने अत्यन्त हताश बनी मलया को ढाढ़स बंधाते हुए कहा, ``प्रिये ! चिन्ता मत कर । मैंने यहां आने का साहस किया है तो आपत्ति से बचने का उपाय भी है, तू निश्चिन्त रह । मेरे पास ऐसी गुटिका है, जिससे मैं अपना मनचाहा रुप कर सकता हूँ ।''

इधर दरवाजे के बाहर ताला लगाकर कनकवती दौड़ती हुई महाराजा के शयनखण्ड में जा पहूंची । आज महाराजा अपने ही खण्ड में सोए हुए थे । चंपकमाला दूर अपने खण्ड में सो रही थी । तत्काल कनकवती ने महाराजा को जगाया और बोली, ``स्वामीनाथ ! आज भयंकर अनर्थ हो गया है । राजवंश की उज्ज्वल कीर्ति पर कालिमा पोत दी गई है । सचमूच, पानी में ही आग लगी है । मलया की दुष्टता की कोई सीमा नहीं है, आज वह किसी कुमार के साथ अपना प्रणय सम्बन्ध स्थापित कर रही है । मैंने उस कुमार को उसके खण्ड में बन्द कर दिया है ।''

``देवी ! तूं यह क्या कह रही है ? मलया तो अत्यन्त ही सुशील कन्या है । यह कभी संभव नहीं है ।''

रानी ने कहा, ``स्वामीनाथ ! विश्वास न हो तो आप मेरे साथ चलिये । वह भाग न जाय, इस हेतु सैनिकों को सावधान कर दीजिये ।''

तत्काल महाराजा ने आवाज दी । चारों ओर से सैनिक दौड़ आए ।

चार-पांच सैनिक कनकवती और महाराजा वीरधवल के साथ मलयासुन्दरी के खण्ड की ओर आगे बढ़े। कनकवती चाबी से ताला खोलने के लिए आगे बढ़ी।

इधर महाबलकुमार ने राजसभा में महाराजा के पास ही बैठी हुई महारानी चंपकमाला को देख लिया था, अतः उसने चंपकमाला के रुप का स्मरण कर गुटिका मुंह में डाली, तत्काल महाबल चंपकमाला के रुप में बदल गया। मलयासुन्दरी ने अन्दर की श्रृंखला हटा दी और वह अपने पलंग पर बैठ गई। महाराजा ने मलया के खण्ड में प्रवेश किया और देखा कि चंपकमाला और मलया प्रेम से वार्ता विनोद कर रही हैं।

अचानक सैनिकों के साथ आए हुए राजा को देखकर चंपकमाला के रुप में रहा महाबल बोला–'स्वामीनाथ ! इस मध्य रात्रि में सैनिकों के साथ...आप, क्या हुआ ?'

सुनते ही महाराजा दंग रह गये। कनकवती भी यह देखकर आश्चर्य चकित रह गई।

वह सोचने लगी, 'मेरी आंखों से मैंने कुमार को इस खण्ड में प्रवेश करते देखा है और अब वह कहां चला गया ?' कनकवती के पश्चाताप का पार न रहा।

कनकवती ने एकांत में जाकर राजा को कहा, 'इस मलया ने अपना लक्ष्मीपुंज हार अपने प्रियतम को दिया है, जरा, उसकी जांच करो। तत्काल राजा ने पूछा-'लक्ष्मीपुंज हार कहां है ? उसी समय चंपकमाला के रुप में रहे महाबल ने महाराजा को वह हार दिखा दिया।

हार को सुरक्षित देखते ही महाराजा वीरधवल कनकवती के प्रति कोपायमान होकर बोले, 'दुष्टा ! आज तक मुझे पता नहीं था कि तेरे हृदय में मलया के प्रति इतनी भयंकर ईर्ष्या रही हुई है ! चली जा यहां से।

कनकवती की स्थिति गंभीर हो गई, वह मन ही मन कहने लगी, 'अरे ! प्रत्यक्ष नजरों से मैंने उस युवक को देखा परन्तु वह कहां चला गया ? अत्यन्त शोकातुर बनी कनकवती अपने खण्ड में चली गई। वह पलंग पर लेटती है, परन्तु किसी भी प्रकार से उसे नींद नहीं आई। 'यह क्या ? क्या मुझे नीचा दिखाने के लिए ही चंपकमाला ने यह सब षड्यन्त्र रचा ? क्या मलया ने अपने प्रियतम को कहीं छुपा तो नहीं दिया ? उस मलया ने मेरी बेइज्जती कर दी, अब मैं उसका बदला लिये बिना नहीं रहूंगी' इस प्रकार

कनकवती भावी कल्पनाओं के जाल में खो गई । उधर कनकवती पर कूपित होकर महाराजा वीरधवल भी सैनिकों के साथ अपने खण्ड में चले गए ।

महाबलकुमार ने वातावरण को शान्त देखकर मुंह में से गुटिका निकाल दी और पुनः अपने मूल स्वरुप में आ गया ।

यह देख मलया बोली, `प्रियतम ! यदि यह गुटिका आपके पास न होती तो आज एक भयंकर आपत्ति आ खड़ी होती ।' प्रियतम ! यह गुटिका आपने कहां से प्राप्त की ?'

`प्रिये ! यह एक सिद्ध पुरुष की सेवा का फल है । उन्होंने मुझे एक दूसरी गुटिका भी दी है जिसको आम्र रस में घिस कर मस्तक पर तिलक किया जाय तो स्त्री पुरुष के रुप में बदल जाती है और पुनः उस तिलक को साफ करने पर पूर्व रुप को प्राप्त कर सकती है ।' कुमार ने कहा ।

मलया ने कहा, `आपके पास तो बड़ी-बड़ी शक्तियां हैं । आपके इस चमत्कार से ही मैं आज बच सकी हूँ ।'

महाबल ने कहा,-`प्रिये ! आपत्ति का निवारण हो चुका है, अब मैं यहां से प्रयाण करता हूँ ।'

मलया ने कहा-`प्रियतम ! मैं आपको किस मुंह से जाने की सलाह दे सकती हूँ ?' मेरा मन आपके बिना अधीर बन जायेगा ।'

महाबलने कहा-`मैं तुझे एक श्लोक देता हूँ, हर आपत्ति में इसे याद करना ।'

विधत्ते यद्विधिस्तत्स्यान्न स्यात् हृदयचिन्तितम् ।

एवमेवोत्सुकं चित्तमुपायान् चिन्तयेद् बहून् ।।

`जो भाग्य में लिखा होता है, वही होता है, परन्तु हृदय से चिन्तित नहीं होता है । व्यर्थ ही उत्सुक बना चित्त, बहुत से उपायों को ढूंढता रहता है ।'

महाबल वास्तव में तत्वज्ञानी भी था, कर्मजन्य संसार की विचित्रताओं को वह समझता था । **जो कुछ भी जीवन में विचित्र घटना बनती है, उसका मुख्य कारण स्वकृत कर्म ही हैं,** इस सत्य का उसने साक्षात्कार किया था ।

`स्वकृत कर्म के अनुसार ही जीवन में विचित्र घटनाएं बनती है ।' यदि इस सत्य को व्यक्ति अपने जीवन में पचा ले तो व्यक्ति हर प्रसंग में आनन्द की अनुभूति कर सकता है ।

हम देखते हैं कि व्यक्ति सुख के प्रसंग को तो जल्दी स्वीकार कर लेता है, परन्तु दुःख के प्रसंग को स्वीकार करने के लिए वह जल्दी तैयार

नहीं हो पाता है, वह उस समय दूसरे पर दोषारोपण करने लग जाता है और अत्यन्त ही दीन बन जाता है ।' इस कटु सत्य को आत्मसात् कर लिया जाय तो सुख में लीनता और दु:ख में आनेवाली दीनता गायब हो जाएगी ।

मलयासुन्दरी को सत्य का कड़वा घूंट पिला कर महाबलकुमार ने प्रेम से विदाई ले ली । महाबल मलया के आवास को छोड़, गुप्त रुप से नीचे उतर गया और अपने आवास स्थल पर पहुँच गया । महाबल ने देखा, `सभी साथी सोये हुए हैं ।' वह भी अपनी शय्या पर सो गया । अरुणोदय के पूर्व ही मन्त्रीश्वर आदि जग गए, कुमार भी जग गया । उन्होंनें प्रात:काल होने के पूर्व ही पृथ्वीस्थानपुर के लिए प्रयाण कर दिया ।

घोड़े पर सवार महाबलकुमार ने पीछे मुड़कर देखा, परन्तु घटादार वृक्षों के कारण राजमहल का दृश्य दिखाई नहीं दिया । उसने घोड़े को ईशारा किया, घोड़ा तेजी से आगे बढ़ने लगा । संध्या होने तक मंत्रीश्वर आदि पृथ्वी-स्थानपुर आ गए ।

८. रात एक: बात अनेक

`बेटा ! देख आया चंद्रावती नगरी ?' राजा सुरपाल ने महाबल के सिर पर हाथ घूमाते हुए पूछा ।

`पिताजी ! बहुत ही सुन्दर नगरी है, जी चाहता था, कुछ दिन और रहने को, परन्तु मंत्रीश्वर को जल्दी आना था, अत: आना पडा ।'

सुरपाल ने कहा, `महाराजा वीरधवल ने तुम्हें पहिचान तो नहीं लिया ?'

`नहीं !' कुमार ने कहा, तत्पश्चात् कुमार ने अपने पिता को नमस्कार कर कहा, `यह लक्ष्मीपुंज हार मुझे राजा वीरधवल ने भेंट स्वरुप दिया है ।

अब तक कुमार ने अपने पिता के सामने कभी झूठ नहीं बोला था, परन्तु आज सत्य घटना कहने में उसे शर्म आ रही थी, अत: उसने सत्य घटना पर पर्दा डाल दिया ।

महाराजा ने वह हार, महारानी पद्मावती को सौंप दिया, पद्मावती ने उसे अपने गले में डाल लिया ।

इधर कुमार का मन सदैव मलया को पाने के लिए चिंतित था । वह उस दिन की प्रतीक्षा में था, जिस दिन वह मलया को दिया हुआ वचन शीघ्र

पूरा कर सकेगा । और वह दिन शीघ्र आ गया । एक दिन महाराजा वीरधवल का दूत सुरपाल राजा के पास आया । सुखपृच्छा के बाद उसने महाराजा सुरपाल को अपने राजा का संदेश सुनाते हुए कहा:-

'राजपुत्री-मलयासुंदरी यौवन में प्रवेश कर चुकी है, अतः उसके विवाह के लिए ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के शुभ मुहूर्त में स्वयंवर की रचना की गई है । इस स्वयंवर में मलयासुंदरी स्वयं ही अपना पति चुनेगी अतः आप अपने कुमार महाबल को साथ लेकर इस स्वयंवर में अवश्य पधारे । वृद्धावस्था के कारण मैं यहां शीघ्र नही आ सका, आज ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी हो चुकी है, अतः आप शीघ्र ही अपने कुमार को चंद्रावती की ओर प्रयाण करा दे ।'

महाराजा ने उसी समय महाबलकुमार को बुलाया और वहां जाने की तैयारी करने का आदेश दे दिया ।

इस संदेश को सुनकर कुमार मन ही मन अत्यंत खुश हो गया, उसके हर्ष का पार नहीं रहा । उसने अपने मन में सोचा-'अब अल्प समय में ही मलया से सुभग मिलन हो जाएगा ।'

महाराजा ने कहा, 'कुमार ! चंद्रावती यहां से काफी दूर है, अतः आज रात को ही यहां से प्रयाण कर देना और वह लक्ष्मीपुंज हार भी साथ में ले जाना ।'

कुमार ने कहा, 'पिताजी ! क्या कहूं ? मैं जब रात में सोता हूँ, तो न मालुम कौन, मेरे वस्त्र-आभूषण आदि की चोरी कर लेता है ?' कल ही शाम को मैंने माताजी से लक्ष्मीपुंज हार लिया था और अपने गले में डाला था, परन्तु पता नहीं रात्रि में कौन उसे उठा कर ले गया ? प्रातःकाल होते ही जब मैंने वह हार नहीं देखा तो मैंने पहरेदारों से पूछताछ भी की ।'

उन्होंने कहा, 'राजकुमार ! हम तो सारी रात जगते रहते हैं, कोई मनुष्य इधर नहीं आया । जब से आपने अपने वस्त्रादि की चोरी की बात की है, तब से हम नंगी तलवार लेकर आपके महल के चारों ओर घूमते रहते हैं । हमने रात को न तो यहां किसी मनुष्य देखा है और न ही किसी स्त्री को ।'

मैंने कई गुप्तचरों को भी सूचित किया, किंतु अभी तक चोर का पता नहीं चला है ।

किसी मित्र ने मुझे कहा है, 'हो न हो, कोई दुष्ट व्यंतरी अथवा विद्याधरी ही यह सब चोरी करती होगी ।' हार की चोरी की बात सुनकर माताजी भी व्याकुल हो गई है ।

माताजी को चिंतातुर देख मैंने यह प्रतिज्ञा की है, `यदि पांच दिन में हार नहीं खोज सका तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा ।' माताजी ने भी यह प्रतिज्ञा की है, `यदि पांच दिन में हार नहीं मिला तो मैं भी जीवित नहीं रहूंगी ।'

अतः रात्रि के समय जागृत रहकर मैं उस चोर का पता लगाऊंगा और फिर उस हार को प्राप्त कर रात्रि के अंतिम प्रहर में ही चंद्रावती के लिए प्रयाण कर दूंगा ।' पिता ने पुत्र की बात में अपनी सम्मति दे दी ।

रात्रि का प्रारम्भ हो चुका था । कुमार अपने पलंग पर लेटा हुआ विचार कर रहा था कि लक्ष्मीपूंज हार किसने उठाया ? उस चोर को कैसे पकडा जाए ?' इन प्रश्नों ने उसकी नींद हराम कर दी थी । शयन खंड के दरवाजे तथा खिड़कियां बंद थी, मात्र रोशनदान खुले थे ।

कुमार ने सोचा, `दरवाजे बंद होने पर भी चोरी होती जा रही है, इसका अर्थ है कि कोई विद्याधर अथवा व्यंतरी ही चोरी करती होगी । उसको पकड़ने के लिए वह शय्या पर से खड़ा हो गया । उसने अपनी शय्या पर कंबल आदि इस प्रकार डाल दिए, मानो वहां कोई सोया हुआ हो । रात्रि के प्रथम प्रहर की समाप्ति के साथ ही कुमार ने देखा, ``रोशनदान में से एक **`हाथ'** ने कमरे में प्रवेश किया है । वह चारों ओर घूम रहा है और पलंग पर कुछ इधर-उधर कर रहा है ।''

कुमार ने सोचा,-`हो न हो, यह विद्याधरी अथवा व्यंतरी का ही हाथ होना चाहिये और इसीने लक्ष्मीपुंज हार चुराया होना चाहिये । अतः ज्योंहि वह हाथ कुमार के पास आया, प्रथम तो कुमार ने सोचा, तलवार से ही इस हाथ को काट दूं, परन्तु फिर विचार किया-`यदि हाथ काट दिया गया तो हार की प्राप्ति कैसे होगी ? अतः ज्योंहि वह हाथ उसके पास आया उसने तत्काल उसे जोर से पकड़ लिया । उस हाथ ने कुमार को धक्का दिया, किंतु कुमार ने और भी अधिक शक्ति से उसे पकड़े रखा । वह हाथ बिना किसी विलम्ब के शयन खंड से बाहर निकल कर आकाश-मार्ग में उड़ने लगा । कुमार उस हाथ पर लटकता रहा । हाथ में पहने हुए कंगण को देखकर कुमार ने अनुमान किया, **``यह हाथ अवश्य किसी स्त्री का होना चाहिये ।''**

हाथ तेजी से आकाश मार्ग की ओर आगे बढ़ने लगा । कुमार ने सोचा- `यह हाथ न मालूम मुझे कहां ले जाएगा और मैं अपने नगर से पता नहीं कितना दूर निकल जाऊंगा ? फिर मुझे अपने नगर तक पहुंचना कठिन हो

जाएगा ।' अतः उसने उस हाथ पर जोर से मुट्ठी का प्रहार किया, उस प्रहार से वह देवी अत्यंत पीड़ा का अनुभव करने लगी। दीन स्वर से वह कहने लगी- 'मुझे छोड़ दो ! मुझे छोड़ दो !' महाबल को उस पर दया आ गई । उसने अपना हाथ छोड़ दिया और वह देवी तुरन्त ही आगे चली गई ।

हाथ को छोड़ने के साथ ही कुमार आम्र वृक्ष पर नीचे गिर पड़ा । अति ऊंचाई से गिरने के कारण वह क्षण-भर के लिए मूर्च्छित हो गया । ठंडी हवा के कारण उसे नींद आ गई ।

रात्रि के साढ़े तीन प्रहर बीतने के बाद कुमार की नींद खुली । अंधेरे में इधर-उधर हाथ फैलाने पर उसे पता चला कि वह किसी पेड पर आ गिरा है । परन्तु वह यह न जान सका कि पृथ्वीस्थानपुर नगर यहां से कितना दूर है ? वह सोच ही रहा था कि पूर्व दिशा में लालिमा छा गई । अचानक उसके कान में भूमि पर हो रहा घर्षण सुनाई दिया । वह सोच में पड गया कि इस शून्य वातावरण में यह आवाज कहां से आ रही है ?

कुमार ने वृक्ष से नीचे उतरकर देखा, 'पूर्व दिशा की ओर से एक भयंकर अजगर उस वृक्ष की ओर आ रहा है, उस अजगर के मुंह में एक मनुष्य है । उस मनुष्य को वह अजगर आधा निगल चुका है ।' यह दृश्य देखकर कुमार का हृदय करुणा से भर गया । उसने तुरन्त निर्णय किया कि अजगर ने जिस मनुष्य को अपना कवल बनाया है, उसे अवश्य बचाना चाहिये । कुमार अजगर की ओर आगे बढ़ा । उसने अपनी भुजाओं के बल से अजगर के दोनों जबड़ों को जीर्ण वस्त्र की भांति चीर डाला ।

अजगर के पेट से अर्द्ध-निगलित प्राणी निकला । उसने मृत अजगर को दूर फैंक दिया, फिर अपने वस्त्र से उस मनुष्य का शरीर साफ किया । वस्त्रों से उसने अंदाजा लगाया कि यह कोई स्त्री है । परन्तु जब उसे यह पता चला कि यह तो मलयासुंदरी है, तो उसके आश्चर्य का पार न रहा । तभी मूर्च्छित स्त्री कुछ होश में आई । होश में आने पर उसने यह श्लोक कहा-

''विधत्ते यद् विधिस्तत्स्यान्न स्यात् हृदयचिन्तितम् ।
एवमेवोत्सुकं चित्तमुपायान् चिन्तयेद् बहून्'' ॥

श्लोक को सुनते ही कुमार ने कहा-''प्रिये ! स्वस्थ बन । तेरी यह दशा देखकर मुझे अत्यंत दुःख हो रहा है । तूं जरा मेरे सामने देख ।''

मलया ने आंखे खोली और अपने सामने अपने प्रियतम को देखकर नमस्कार कर बोली, ``हे स्वामी, आप यहां कैसे ? क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ ?

कुमार ने कहा-``प्रिये ! यह कोई स्वप्न नहीं है । चलो पहले नदी किनारे जाकर अपने वस्त्र तथा मुंह आदि साफ कर लो ।

महाबल की आज्ञा से मलयासुंदरी खड़ी हो गई और पास में बहती हुई नदी पर हाथ-मुंह आदि धोने लगी । फिर दोनों आकर वृक्ष के नीचे बैठ गये ।

कुमार ने कहा-``प्रिये ! अपने राजमहल से दूर तुम यहां इस अजगर के मुंह में कैसे आ गई ?''

मलयासुंदरी बोली-``प्रियतम् ! मेरी इस घटना को सुनने के लिए आपको अपना हृदय कठोर बनाना पड़ेगा, फिर मैं अपनी बात बताऊंगी ।''

महाबल और मलयासुंदरी परस्पर बातचीत कर रहे थे तभी उन्हें सामने से भागकर आती हुई एक मनुष्य-आकृति दिखाई दी । महाबल ने सोचा, `रात्रि का समय है, अतः कोई चोर, लुटेरा अथवा डाकू भाग रहा होगा, यदि मुझे सतायेगा, तो जरुर उससे युद्ध करुंगा, परन्तु इस समय मेरे साथ मलया है, अतः उसका उपाय मुझे पहले करना होगा ।'

तभी आम्र वृक्ष के ऊपर से एक आम तोड़कर उसका रस निकालते हुए उसने मलया से कहा-``मेरे पास एक गुटिका है, इस आम्ररस में घिस कर, मस्तक पर लगाने से तुम तुरंत ही पुरुष बन जाओगी, फिर यहां किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा । साथ में स्त्री होने से इस जंगल में डर की भी संभावना है । ऐसा कहकर कुमार ने मलया के सिर पर तिलक किया । उसके प्रभाव से मलया तत्काल पुरुष रुप में बदल गई ।

महाबल और मलया दोनों पास पास-में बैठे हुए थे । इतने में एक घबराई हुई स्त्री वहां आ गई ।

महाबल ने कहा-``शुभ्रे ! तुम क्यों घबरा रही हो ?'' हम परदेशी हैं, हमारे से घबराने की आवश्यकता नहीं है । यह नगर कौनसा है ? तुम कौन हो ? और कहां से आ रही हो ?''

आगंतुक स्त्री को लगा, ये राजपुरुष नहीं हैं, अतः उनसे बात करने में शंका रखने की आवश्यकता नहीं है । मलया का रुप बदल जाने के कारण वह

उसे पहिचान नहीं पाई, किंतु मलया ने उसे पहिचान लिया। उसने अपनी बात प्रारम्भ की।

आगंतुक स्त्री ने कहा,-``पास में चन्द्रावती नगरी है, यहाँ के राजा वीरधवल की चंपकमाला और कनकवती नाम की दो रानियां हैं। चंपकमाला की एक पुत्री है मलयासुन्दरी। मेरा नाम सोमा है। ज्योंहि कुमार ने यह सुना कि पास में ही चंद्रावती नगरी है, उसके आनन्द का पार नहीं रहा।

सोमा बोली-``कनकवती को मलया के प्रति अत्यन्त रोष था, वह किसी भी प्रकार से मलया को नष्ट करना चाहती थी। उसके हृदय की आग दिन-प्रतिदिन बढती जा रही थी, परन्तु कोई उपाय नहीं था, जिससे मलयासुन्दरी को खत्म किया जा सके। इधर महाराजा ने चंपकमाला की सलाह से ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन मलयासुन्दरी के स्वयंवर की घोषणा करा दी। चारों ओर इस समाचार को पहुंचाने के लिए दूत भेज दिये गए।

कनकवती अत्यन्त व्याकुल थी। उसने सोचा,- ``अब मलया ससुराल चली जाएगी, फिर मैं वैर का बदला कैसे ले सकूंगी ?'' अतः वह मलया के छिद्र देखने लगी। एक दिन कनकवती अपने शयनखण्ड में सोई हुई थी, तभी आकाश-मार्ग से कोई देवी उड़ती हुई वहां आई। उसने लक्ष्मीपुंज हार कनकवती पर डाल दिया।

हार को देखते ही कनकवती जाग गई। ``अरे ! यह हार कहां से आ गया ?'' प्रकाश में देखा तो यह वही लक्ष्मीपुंज हार था, जो मलया के पास था। अब कनकवती के आनन्द का पार नहीं रहा। उसने वह हार अपने खण्ड में छुपा दिया और सुन्दर वस्त्र आभूषण आदि से अलंकृत होकर महाराजा के खण्ड की ओर आगे बढी। महाराजा अपने खण्ड में थे। कनकवती ने बड़े आडम्बर के साथ महाराजा को नमस्कार किया और बोली-``प्राणेश ! आपका स्वस्थ्य तो ठीक है न !''

``परन्तु तुम्हारा इस समय अचानक आगमन कैसे हुआ ?'' राजा ने पूछा।

``प्राणेश्वर ! मैं किसी विशेष प्रयोजन से आपके पास आई हूँ। स्वामीनाथ ! मैं आपके हित की बात लेकर आई हूँ, परन्तु कहने में धर्म संकट हैं। शायद आप मेरी बात....।''

राजा ने कहा-``प्रिये ! कल्याण की बात में धर्म संकट किस बात का ? जल्दी कह ।''

रानी बोली: ``स्वामिन् ! आपकी राजगद्दी पर कब्जा करने के लिये भयंकर षड्यंत्र रचा जा रहा है । शायद इसकी गंध तो...।''

राजा ने कहा: `मुझे इसकी बिल्कुल गंध नहीं है । जो सत्य बात है, वह मुझे जल्दी बता ।'

``कृपानाथ ! मैं गत कई दिनों से देख रही हूं कि राजभवन में प्रतिदिन एक गुप्तचर मलया के खण्ड में आता जाता है, मलया और गुप्तचर के बीच जो बातें हुई हैं, वह.....।''

``प्रिये ! जल्दी बता, क्या बात हुई है ?''

``स्वामिन् ! आपके मित्र सुरपाल राजा का बलवान् पुत्र महाबल स्वयंवर के बहाने एक बड़ी सेना के साथ यहां आएगा और अपने विराट् सैन्य बल से आपको हरा कर राजगद्दी प्राप्त कर लेगा । मलया उसकी महारानी बनेगी । मलया और गुप्तचर के बीच ये बातें हो रही हैं, यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो मैं इसका पक्का प्रमाण....।''

``इसका क्या प्रमाण है तुम्हारे पास ?''

``मलया ने कल रात को अपना लक्ष्मीपुंज हार दूत को देते हुए कहा है कि यह हार महाबल को दे देना, इस हार के प्रभाव से वह अवश्य विजयी बनेगा ।''

``ओहो ! ऐसा भयंकर षड्यन्त्र मेरे विरुद्ध रचा जा रहा है ?''

``स्वामीनाथ ! आपको इस बात की पक्की जांच करनी हो तो अभी मलया को बुलाकर हार की पूछताछ कर लीजिये ।''

कनकवती के इन शब्दों ने वीरधवल पर जादूसा असर किया । राजा ने प्रतिहारी को बुलाकर कहा-``जाओ ! और अभी महारानी चंपकमाला को बुला कर लाओ !''

थोड़ी ही देर में चंपकमाला वहां हाजिर हो गई और बोली-``स्वामिनाथ ! क्या आज्ञा है ?''

`मलया का स्वयंवर अपने विनाश का कारण बनने जा रहा है ।'

`स्वामिनाथ ! यह आप क्या कह रहे है ?'

`प्रिये ! अब मलया अपनी संतान नहीं रही, वह दुष्ट राक्षसी बनकर हमारे सामने आ रही है । उसे हमारे ही खून की प्यास लगी है ।'

`स्वामिन् ! बात क्या है ?'

राजा ने कनकवती के द्वारा कही हुई बात विस्तार से कह दी, जिसे सुनकर चंपकमाला भी गुस्से में आ गई ।

``स्वामिन् ! लक्ष्मीपुंज हार की अभी जांच करनी चाहिये, यदि नही मिले, तो स्वयंवर के पूर्व ही उसका काम तमाम...।''

महाराजा ने तत्काल मलयासुन्दरी को बुलाने के लिए प्रतिहारी को आदेश दिया । कुछ ही देर बाद मलयासुन्दरी द्वार पर आ खड़ी हुई और बोली- ``पिताजी ! आपने मुझे याद किया ?''

``लक्ष्मीपुंज हार कहां है ? अभी ले आओ ।''

इस बात को सुनकर मलया घबरा गई । उसकी घबराहट देखकर राजा गुस्से में बोला-``अरे, मेरे प्रश्न का जवाब दे ?''

`पिताजी ! वह हार कुछ दिनों से खो गया है ।'

सुनते ही राजा की आखें लाल हो गई और बोला-``दुष्टा ! चली जा यहां से, अपने खण्ड में ! पिता के वंश का नाश करने वाली राक्षसी ! मैं तेरा मुंह भी देखना नहीं चाहता । तूंने भयंकर षड्यन्त्र रचा है, अतः अब तू जीवित नहीं रहेगी ।''

मलया दिग्मूढ़ हो गई । ``यह क्या ? जिस पिता ने जीवन भर प्रेम का अमृत पिलाया, जिसने मेरे लिये अमूल्य वस्तु की कभी परवाह नहीं की, आज वे ही पिता एक हार के लिए इतने कोपायमान ?'' मलया इस पहेली को कुछ भी समझ नहीं पाई । वह अपने कक्ष में चली गई ।

महाराजा ने उसके खण्ड की ओर सैनिकों का पहरा लगवा दिया । महाराजा के खण्ड में दो महारानियां ही थी ।

महाराजा ने चंपकमाला से कहा, ``प्रिये ! षड्यंत्र की गंध आ गई न ! बोल ! उसे क्या सजा दी जाए ?''

स्वामी के प्रश्न को सुनते ही माता चंपकमाला का हृदय भी वज्र-सा

कठोर बन गया । उसके हृदय में रहा हुआ प्रेम का झरना सूख गया ।

उसने कहा, `उस दुष्टा का तो वध ही होना चाहिये ।'

राजा ने उसकी बात को स्वीकार कर नगर रक्षक को आदेश दे दिया । इस आदेश को सुनकर नगर रक्षक का हृदय भी कांप उठा । अरे यह क्या ! लाड-प्यार की प्रतिमा, ऐसी मलया के वध का आदेश ! वह विचार में पड़ गया ।

``आज्ञा सुनी या नहीं ?'' राजा ने क्रोध से पूछा ।

``जी महाराज !'' नगर रक्षक ने कहा ।

नगर रक्षक समझ नहीं पाया कि एक कुंआरी अबला पर ऐसा भयंकर अत्याचार क्यों हो रहा है ? वह सीधा मलया के खण्ड की ओर बढ़ा और उसने उसे राजा की आज्ञा सुना दी ।

सुनते ही मलया दंग रह गई । मलया के वध के आदेश के समाचार सुबुद्धि मंत्री को मिले । उसने राजा को बहुत समझाया कि इस प्रकार कदम जल्दबाजी में न उठाए । शायद आपको बाद में पछताना पड सकता है । परन्तु राजा अपने विचारों से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुआ । उसने महामंत्री को पूरी घटना सुना दी । महामंत्री राजा के निर्णय पर मौन रहा ।

मलया ने दंडपाशिक से कहा-``किस कारण पिताजी मेरा वध करना चाहते है ?''

दंडपाशिक ने कहा-``यह तो मैं कुछ नहीं जानता ।''

मलया रोने लगी-``अहो ! क्या मां का हृदय भी इतना कठोर हो गया ? वह भी पिता के निर्णय के बीच नहीं आई ? मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है, जिसकी मुझे यह सजा दी जा रही है ? अहो ! **पुण्य-पाप की कैसी विचित्र लीला है ? अति स्नेह करने वाले माता-पिता ही आज मेरे वैरी बन गए हैं ।''**

उसने अपनी दासी वेगवती को बुलाया और कहा-``दासी ! तूं महाराजा के पास जा और पूछकर आ कि आपकी पुत्री ने ऐसा क्या अपराध किया है ? जिस कारण उसे यह भयंकर सजा दी जा रही है । उस अपराध को जानकर वह प्रेम से मृत्यु का स्वीकार कर लेगी । दूसरी बात यह भी कह देना कि मृत्यु के पूर्व वह आपके अन्तिम दर्शन करना चाहती है ।''

दासी ने ये दोनों समाचार राजा को तुरन्त पहुंचा दिये ।

कोपातुर राजा बोला-``अरे दुष्टा । भयंकर अपराध करके भी अब अज्ञानी बनने का आडंबर कर रही है ? राजा को तेरा प्रणाम नहीं चाहिये । यदि वह इच्छित मरण चाहती है, तो वह मुझे स्वीकार है ।''

दासी ने जाकर यह बात मलया को कह दी । मलया के दु:ख का पार न रहा । उसने यथेच्छ मरण के रुप में गोला नदी के किनारे रहे अंधकूप में गिरकर मर जाने का निर्णय किया । फिर धैर्य धारण कर स्वीकार किए हुए मार्ग का विचार करती हुई, मन को समाधि में स्थिर रख, नगर रक्षकों के साथ चल पड़ी । उसे जाती हुई देखकर महल के दास दासियों की आंखों में से अश्रुधारा बहने लगी । सभी मन ही मन राजा के निर्णय को बुरा मान रहे थे । सभी के मन में मलया के प्रति अपार स्नेह था ।

कुछ ही देर में यह बात सारे नगर में पवन की भांति फैल गई । मलया के मृदु स्वभाव, मधुर आलाप तथा उसकी भव्य प्रतिभा से परिचित समस्त प्रजाजन चौधार आंसु बहा रहे थे । आगे-आगे नगर रक्षक तथा मलयासुन्दरी थी और पीछे-पीछे प्रजाजन चल रहे थे ।

थोडी ही देर में गोला नदी का किनारा आ गया । उसके पास ही भयंकर अंधकुँआ था । मलयासुन्दरी उसके निकट आ गई । उसने नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया । उसने अंधकुँए में छलांग लगा दी । प्रजा में हाहाकार मच गया । सबकी आंखों से आंसु बहने लगे । मलयासुन्दरी की मृत्यु के समाचार से मात्र राजा को आनन्द था और उसकी दोनों रानियों को, शेष प्रजा तो पीड़ा से कराह रही थी ।

महाराजा वीरधवल अपने बैठक खण्ड में बैठे हुए थे, तभी नगर रक्षक ने आकर कहा-`स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार मलयासुन्दरी ने स्वयं ही अंधे कुँए में कूदकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली है ।'

`बहुत अच्छा हुआ' महाराजा बोले ।

इसी बीच मंत्रीश्वर महाराजा के बैठक खण्ड में आ गये । मंत्रीश्वर के चेहरे पर उदासीनता छाई हुई थी ।

राजा ने कहा-`मन्त्रीजी ! आप उदास क्यों हैं ? मलया की मृत्यु तो मेरे वंश के रक्षण में कारण बनी है और इस षड्यंत्र का भेद खोलने का सारा

श्रेयः कनकवती को है । अब हमें कनकवती के महल में चलकर उसके इस शुभ कार्य का योग्य सम्मान करना चाहिये ।'

इच्छा न होते हुए भी महामन्त्री राजा के साथ चल पड़े । राजा और मन्त्री दोनों कनकवती के खण्ड के पास पहुंचे । द्वार अन्दर से बन्द था । छिद्र में से राजा ने देखना चाहा कि रानी क्या कर रही है ? देखते ही उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा । वह तुरन्त ही मूर्च्छित हो गया । मलयासुन्दरी की मृत्यु के समाचार सुनकर कनकवती के आनन्द का पार नहीं था । उसके खण्ड में केवल मैं (सोमा दासी) ही उपस्थित थी ।

कनकवती ने मुझे कहा, 'हे प्रिय सखी ! आज मैंने महाराजा को अपने वाग् जाल में फंसा लिया और अपनी योजना सफल बना दी । मेरी इस योजना को सफल बनाने का पूरा श्रेयः इस लक्ष्मीपुंज हार को है ।'

सुनते ही राजा चिल्लाने लगा, 'एक निर्दोष कन्या की क्रूरतम हत्या ! हाय ! हाय ! मेरे हाथों से भयंकर भूल हो गई । मलया ! हे मलया ! निष्कारण मैंने तेरा वध करा डाला । अब मैं जिन्दा नहीं रह सकूंगा ।'

महामन्त्री ने कनकवती के द्वार पर धक्का मारा, परन्तु अन्दर से दरवाजा बन्द होने से द्वार खुल नहीं पाया ।

'राजा ने लक्ष्मीपुंज हार देख लिया है' यह जानकर मैं और कनकवती घबरा गई । अब यहां जीना दुष्कर हो जाएगा । सोचकर कनकवती ने लक्ष्मीपुंज हार और अन्य आभूषण ले लिये । झरोखे के पीछले भाग से हम दोनों कूद पड़ी ।

भागती हुई हम दोनों आगे बढ़ी । आगे जाकर कनकवती ने कहा, ``राजा के सैनिक आऐंगे । वे हमें पकड़ लेंगे, अतः दोनों का साथ में रहना हितकर नहीं है । मैं जाती हूँ मगधा वेश्या के घर और तू कहीं ओर चली जा । ऐसा कहकर कनकवती मगधा वेश्या के घर चली गई और मैं दौड़ती हुई यहां आई हूँ ।''

सोमा दासी ने इतनी घटना अज्ञात महाबल और मलयासुन्दरी को सुना दी, फिर वह भय के मारे आगे चली गई ।

यह घटना सुनकर महाबल दंग रह गया । उसने मलया को कहा, 'अहो ! एक ही रात्रि में कर्म के कैसे भयंकर परिणाम तुझे भोगने पडे है ? अन्धकूप में गिरने के बाद भी पुण्ययोग से तूं जीवित रही । लगता है तूं सीधी

अजगर के मुंह में जा गिरी होगी और वही अजगर तुझे निगल कर आंटे लगाने के लिए यहां आ रहा होगा, परन्तु भाग्य से मैंने उसे देख लिया और तुझे बचा लिया।''

मलया ने कहा-`प्रियतम ! आप यहां कैसे आ गए ?' महाबल ने विस्तार से उस व्यंतरी की घटना सुनाई और अन्त में बोला-``हो न हो, वह व्यंतरी पूर्वभव की अपनी कोई शत्रु है, जिसने मेरे पास से लक्ष्मीपुंज हार लेकर कनकवती को सौंपा।''

मलया ने कहा-`आपका अनुमान पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है।'

रात्रि के अतिश्रम से महाबल और मलयासुन्दरी दोनों क्षुधातुर थे, अतः महाबल ने कुछ आम के फल तोड़े। उन्हें खाकर उन दोनों ने अपनी क्षुधा शांत की।

महाबल ने मलया से कहा-``प्रिये ! अब हमें तीन काम करने हैं, प्रथम तेरे पिता को मृत्यु के मुख से बचाना है। विधिपूर्वक तेरे साथ पाणिग्रहण करना है और तीसरा कार्य लक्ष्मीपुंज हार प्राप्त कर मेरी मां के प्राण बचाने हैं।''

महाबल ने इधर-उधर देखा, पास में ही भट्टारिका का मंदिर था। उसके बाहर छः फुट लम्बी काष्ठ की दो फाड़ें पड़ी थीं, जो अंदर से पोली थी। दो फाड़ों के बीच एक मनुष्य आराम से सो सकता था। उस फाड़ों को देख महाबल ने अपना कल्पना चित्र खडा कर दिया।

उसने मलया से कहा-``प्रिये ! तेरे पास कोई राज चिन्ह हो तो मुझे दे दे, ताकि कोई चोर आदि तुझे लूंट न ले।''

मलया ने कहा-`प्रियतम ! मैं सब आभूषण महल में ही छोड़कर आई हूँ। केवल एक अंगुठी मेरे पास है।'

उसने वह अंगुठी निकाल कर महाबल को सौंप दी।

महाबल ने मलया को कहा ``आज तुझे दिन भर इसी गुप्त वेष में रहकर नगर में घूमना होगा और शाम के समय मगधा वेश्या के घर जाना होगा। वहां किसी भी प्रकार से अपनी बुद्धि का प्रयोग कर कनकवती के पास से लक्ष्मीपुंज हार प्राप्त कर कल शाम तक पुनः इसी भट्टारिका के मन्दिर में आना होगा। इतना कहकर दोनों ने अलग-अलग दिशा में विदाई ले ली।

९. अनोखा निमितज्ञ !!!

महाराजा वीरधवल, कनकवती के खण्ड के बाहर करूण कल्पांत रुदन कर रहे थे। जिसे सुनकर राजसेवक इकट्ठे हो गये। महारानी चंपकमाला को भी ये समाचार पहुंच गये। वह भी तुरन्त वहां पर आ गई। वास्तविक बात का पता लगने पर वह भी मूर्च्छित होकर धरती पर ढल पड़ीं। राजा और रानी दोनों मुर्च्छित अवस्था में थे। असली बात का पता केवल मंत्री को ही था। उसने राजा का औषधोपचार किया। थोड़ी देर बाद राजा की बेहोशी दूर हो गई। उसका जोरों से रुदन चालू हो गया। राजा और रानी के करुण क्रन्दन से राजमहल की दीवारें भी रो उठी। सभी व्याकुल दिखाई दे रहे थे।

राजा ने कहा-``महारानी ! वह कनकवती कितनी दुष्ट निकली ? मैंने मंत्रीश्वर की एक न सुनी। अपनी हठ पर अडिग रहा। उस भोली-भाली कन्या के ऊपर कैसा भयंकर आरोप लगाया गया ? मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और मैं कनकवती के वाग्जाल में फंस गया। कहां है वह दुष्टा ?'' यह कहकर राजा ने कनकवती को पकड़ने के लिए सैनिको को आदेश दे दिया।

सैनिक कनकवती के खण्ड की ओर दौड़े। दरवाजा अन्दर से बन्द था। कुछ ही मिनिटों में दरवाजा तोड़ दिया गया, परन्तु वहां न कनकवती थी और न ही उसकी दासी। हां कुछ सामान अवश्य इधर-उधर बिखरा हुआ था।

सैनिक वापस निराश लौट आए और बोले-``स्वामीनाथ ! कनकवती वहां नहीं है, वह अवश्य कहीं भाग गई है। यह सुनकर राजा के पश्चाताप का पार नहीं रहा। राजा ने आदेश दिया कि उस दुष्टा रानी को कहीं से भी जीवित अथवा मृतावस्था में पकड़ कर लाया जाय।

राजाज्ञा को स्वीकार कर सैनिक कनकवती की तलाश में चारों ओर निकल पड़े। परन्तु वह दुष्टा कहां से मिले ? वह तो मगधा वेश्या के अन्तिमखण्ड में छुप गई थी।

चंपकमाला की दशा भी खराब थी। ``एकाकी पुत्री ! वह भी कितनी गुणवान् ! सरलता की साक्षात् मूर्ति ! `अहो ! मैं कैसी दुष्टा ! राजा कदाचित् कोपायमान हो गया। परन्तु मैं तो उसकी मां थी माँ ! मैं कैसी वज्रहृदया बन गई ?'' इस प्रकार करुण स्वर से रोती हुई वह दूसरों को रुला रही थी।

महामन्त्री समझा रहे थे, ``अब आप शांत हो जाय। जल्दबाजी सदैव

नुकसान करती है । अभी भी एक अवसर है । उस अंधकूप की तलाश की जाय, कदाचित् भाग्यवश वह जीवित मिल जाय ।'

राजा उस अंधकूप से परिचित था । उसमें गिरकर बचने की कोई संभावना नहीं थी, फिर भी मन्त्री की सलाह राजा ने स्वीकार की । राजा ने कुछ कर्मचारियों को उस अंधकुँए में उतारने का आदेश दिया ।

राजा की आज्ञा को प्राप्त कर, प्रकाश आदि की व्यवस्था कर, एक दो कर्मचारी उस कुंए में उतरे । उन्होंने कुंए की अच्छी तरह से छानबीन की, परन्तु वहां न तो मलयासुन्दरी मिली और न ही उसका शव । वे निराश होकर वापस लौट आए ।

जब राजा ने सोचा, 'मलयासुन्दरी मर चुकी है ।' राजा ने अपनी राज सभा में घोषणा कर दी, 'घोर पाप के पश्चात्ताप के रुप में मैं आज मध्याह्न में अग्नि-स्नान कर अपने जीवन को समाप्त कर दूंगा ।'

``इतना भयंकर अन्याय करने के पश्चात् अब मुझे जीने का कोई अधिकार नहीं है ।'' राजा के इस निर्णय की घोषणा के साथ महारानी चंपक-माला ने भी चिता प्रवेश की घोषणा कर दी ।

मन्त्रीश्वर ने महाराजा को बहुत समझाया, ``हे राजन् ! आपके हाथों से एक भूल हो गई, अब दूसरी भूलकर, आप अपने जीवन को समाप्त न करे, आपके बिना प्रजा अनाथ हो जायेगी ।''

परन्तु राजा अपने निर्णय पर अडिग था । उसने राज कर्मचारियों को आदेश दे दिया कि गोला नदी के किनारे दो चिताएं तैयार कर दी जाय । हम दोनों चिता प्रवेश कर अपने पाप का पश्चात्ताप करेंगे, अग्नि प्रवेश के बिना हमारे इस पाप की शुद्धि नहीं होगी ।

नगर के बाहर चन्दन की दो चिताएं तैयार कर दी गई । महाराजा वीरधवल और महारानी चंपकमाला चिता प्रवेश के लिए राजमहल से निकल गए । उनके पीछे-पीछे प्रजाजन कल्पांत करते हुए जा रहे थे । पूरे नगर में शोक छाया हुआ था । उदासीनता से सभी के चेहरे फीके लग रहे थे । सभी की आंखों से अश्रुधारा बह रही थी । महाराजा और महारानी नगर के बाहर आ चुके थे । चिता प्रवेश की तैयारी चल रही थी ।

इधर महाबलकुमार ने कुछ ही समय पूर्व नगर में प्रवेश किया । नगर में

प्रवेश करते ही पता चला, ``राजा-रानी दोनों आज मध्याह्न में अग्नि प्रवेश कर रहे हैं ।'' अतः उनको बचाने के लिए, महाबलकुमार श्मशान की ओर आगे बढ़ा । मार्ग में उसने देखा, `कुछ राज कर्मचारी हाथी की विष्टा को पानी में डालकर उस पानी को छान रहे हैं ।'

महाबल ने पूछा-``भाई ! यह क्या कर रहे हो ?''

काम करता हुआ एक नौकर बोला-``यह राजा का पट्टहस्ती है । कल यहां राजकुमार पास में खेल रहा था, उसने अपने गले में से सोने की चेन निकाल कर इक्षु के टुकडे को विंटला दी और वह इक्षु का टुकडा हाथी की ओर फैंक दिया । हाथी ने इक्षु के साथ वह सोने की चेन भी निगल ली । वैद्य के कहने से हाथी की विष्टा को पानी में डाल कर छान रहे हैं ।''

महाबल महावत से बात कर रहा था । बात करते-करते उसने घास का एक पुला उठाया और उसके बीच मलयासुन्दरी के नाम से अंकित एक अंगुठी डाल कर वह पुला हाथी को खिला दिया और आगे बढ़ गया ।

गुटिका के प्रभाव से उसने निमितज्ञ के रुप में अपना रुप बदल लिया । वह तेजी से श्मशान की ओर भागा ।

उसने जोर से चिल्लाया, ``अरे ठहरो ! ठहरो ! जल्दी मत करो ! जिस कारण से महाराजा अग्नि प्रवेश कर रहे हैं, वह मलयासुन्दरी तो जीवित है ।'' लोगों को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने यह बात आगे बढ़ाई और अंत में महामन्त्री ने जाकर राजा को कही ।

राजा ने कहा-``यह कैसे हो सकता है ?''

मन्त्री बोला-``राजन् ! एक बार आप ठहर जाइये, वह निमित्तज्ञ आ रहा है उसकी बात सुन लीजिए, फिर जो ठीक लगे, वह कर लेना ।''

राजा ने उस निमितज्ञ का इंतजार किया । वह तेजी से दौड़ता हुआ रहा था । लोगों ने उसे मार्ग दिया । उसके गोरे रंग, विशाल भाल और चांद से मुखडे को देखकर लोगों ने उसका सत्कार किया । थोडी ही देर में वह राजा के पास आ पहुंचा ।

उसने आते ही कहा-``**राजन् ! आप राजमहल में पधारिये, व्यर्थ ही अग्नि-प्रवेश मत कीजिये, आपकी कन्या मलयासुन्दरी जीवित है ।''**

राजा ने कहा-``उस अन्धकूप में बचना कैसे सम्भव है और तुमने यह कैसे जाना कि वह जीवित है ? तुम कौन हो ?''

निमितज्ञ के वेष में रहा महाबल बोला,-`मैं ज्योतिष के द्वारा भविष्य को जानने वाला निमितज्ञ हूं। मैं देश-विदेश भ्रमण करता हुआ आज ही यहां आया हूँ। लोगों से मैंने सुना है कि यहां के राजा-रानी अपनी कन्या के निमित्त से चिता-प्रवेश कर रहे हैं।'' तत्काल मैंने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया और निमित्त के बल से जाना कि मलयासुन्दरी जीवित है, अतः आप न मर जाये, इसीलिए यहां दौड़ता हुआ आया हूँ।''

निमितज्ञ की साहस भरी बात सुनकर मन्त्री ने कहा-``राजन् ! आप इसकी बात पर विश्वास कीजिये। फिर भी यदि मलयासुन्दरी न मिले तो आपको जो ठीक लगे, वैसा कर सकोगे।''

राजा ने महाबल से कहा-``आपके निमित्त ज्ञान से मलयासुन्दरी मुझे कब मिलेगी ?''

निमितज्ञ ने नौकरों को आदेश दिया, `पहले जलती हुई चिता को शांत कर दो।' आदेश पाते ही कर्मचारी दौड़ पडे और उन्होंने चिता को शांत कर दी।

एक वृक्ष के नीचे सभी इकट्ठे हो गए। राजा, रानी और निमितज्ञ सबके मध्य में थे। लोगों को निमितज्ञ की बात सुनने में भारी दिलचस्पी थी। सभी उस निमितज्ञ का उपकार मान रहे थे, जिसके आगमन से राजा-रानी मौत के मुख में जाने से बच गए थे।

निमितज्ञ ने कहा,-``राजन् ! आज से तीसरे दिन आपको मलया-सुन्दरी मिलेगी।''

राजा बोला-``मुझे मेरी बेटी कहां मिलेगी ?''

निमितज्ञ ने कहा, ``वह आपको स्वयंवर मण्डप में मिल जायेगी।''

राजा ने कहा-`क्या उसकी प्राप्ति का कोई संकेत पहले प्राप्त होगा ?'

निमितज्ञ ने कहा,-`जरुर होगा। मलयासुन्दरी का राजचिन्ह प्राप्त होगा।'आपको चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल नगर के पूर्व द्वार के पास कुलदेवी के नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित, छः हाथ प्रमाण वाले स्तम्भ को स्वयंवर मण्डप में लाना होगा। उस स्तम्भ के सामने आपके पूर्वजों का वज्रसार धनुष लाकर

रख देना, जो व्यक्ति धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर उस स्तम्भ को भेदेगा, वही मलयासुन्दरी का पति होगा। यह सब मैंने अपने निमित्त ज्ञान से जाना है। यदि उपरोक्त तीन संकेत आपको न मिले तो आप जैसा चाहे, कर सकोगे।''

निमितज्ञ की बात सुनकर प्रजाजन खुश हो गये और बार-बार उसकी जय बुलाने लगे।

राजा ने निमितज्ञ को धन्यवाद देते हुए कहा,-`हे उपकारी निमितज्ञ ! स्तम्भ की पूजन विधि आदि का कार्य भी आपको ही करना होगा, मलयासुन्दरी की प्राप्ति होने तक आपको राजमहल में ही हमारे साथ रहना होगा।'

निमितज्ञ ने राजा की बात स्वीकार कर ली। हर्षध्वनि से वातावरण गुंज उठा।

राजा ने निमितज्ञ से पूछा-``क्या आप यह बताने की कृपा करोगे, `मेरी पुत्री का विवाह किसके साथ होगा ?'

निमितज्ञ ने शकुन शास्त्र की गिनती आदि का नाटक रचकर कुछ क्षण बाद कहा-``राजन् ! निमित्त शास्त्र से ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल के पुत्र महाबलकुमार के साथ मलयासुन्दरी का पाणिग्रहण होगा।''

यह सुनकर राजा के आनन्द का पार नहीं रहा।

मध्याह्न का सूर्य तेजी से चमक रहा था। बंदीपाठक ने समय सूचकता का संकेत किया। तत्काल महाराजा और महारानी गजराज पर आरुढ़ हो गये और नगर की ओर आगे बढने लगे।

प्रजाजनों के आनंद का पार नहीं था। श्मशान यात्रा, शोभा यात्रा में बदल गई।

१०. चमत्कार

हाथ-मुंह का प्रक्षालन कर महाराजा ने निमितज्ञ के साथ भोजन कक्ष में प्रवेश किया। महाराजा को तीव्र भूख लगी हुई थी, अतः उन्होंने बड़े प्रेम से निमितज्ञ के साथ भोजन किया। भोजन के बाद महाराजा ने आराम खण्ड में प्रवेश किया। निमितज्ञ को भी आराम के लिए सुकोमल शय्या दे दी गई।

निमितज्ञ के वेष में रहे महाबल ने सोने का बहाना किया, परन्तु उसे नींद कहां? वह तो इसी चिंता में था कि 'मलया ने कनकवती के पास से लक्ष्मीपुंज हार प्राप्त किया अथवा नहीं?' महाबल को सबसे बड़ी चिंता थी, अपनी मां को बचाने की। यदि मां को लक्ष्मीपुंज हार नहीं मिला तो वह अपने जीवन का अन्त ला देगी। इसी चिंता में महाबल को क्षणमात्र भी नींद नहीं आ रही थी।

आज ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी थी और कल शाम तक कनकवती के पास से हार लाकर पुनः गोला नदी के किनारे, भट्टारिका के मन्दिर में मलया को मिलने का कार्यक्रम बनाया गया था।

★ मलया महाबल की आज्ञा को स्वीकार कर मगधा वेश्या के घर जाने के लिए प्रस्थान कर चुकी थी। विविध कल्पनाओं से कभी-कभी महाबल कांप जाता था। भावी अनर्थो की कल्पना कर वह कभी कभी आकुल-व्याकुल हो जाता था, परन्तु पुनः विचार करता, मलया जरूर हार लेकर आएगी और मेरी योजनायें अवश्य साकार होगी।' इस प्रकार की चिंताओं में उसने अपना दिन बिता दिया। रात्रि में उसने राजमहल में आराम किया।

त्रयोदशी के सूर्य का उदय हो चूका था और अचानक ही एक राज-सेवक ने राजमहल में प्रवेश किया। वह राजा को नमस्कार कर बोला-'स्वामिन्! कल से पट्टहस्ती की विष्टा को पानी में डाल कर, उस पानी को छाना जा रहा है। आज प्रातः काल जब विष्टा को पानी में डाला गया, पानी छानने पर यह सोने की अंगुठी मिली है।'

राजा ने वह अंगुठी हाथ में ली और गौर से देखकर बोला-''अहो! इस पर तो मलयासुन्दरी का नाम लिखा हुआ है, यह तो मलया की अंगूठी है। लगता है, निमितज्ञ की बात सत्य सिद्ध हुई है।''

राजा ने निमितज्ञ को बुलाया और कहा, 'यह मलयासुन्दरी की अंगूठी प्राप्त हुई है।'

निमितज्ञ के रुप में रहा महाबल अत्यंत खुश हो गया । उसने सोचा `मेरा दाव सीधा पड़ रहा है । निमितज्ञ ने राजा को कहा-``यही तो निमित्त शास्त्र का प्रभाव है । मैंने आपसे यही कहा था न....!''

राजा ने कहा-``परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि मलया की अंगूठी हाथी की विष्ठा में कहां से आ गई ?''

राजा की शंका का समाधान करते हुए निमितज्ञ ने साहसपूर्वक कहा- **``कुलदेवी की अपार शक्ति है, उसकी शक्ति के आगे सबको झुकना पड़ता है, कुलदेवी क्या नहीं कर सकती ? वह सदैव जागरुक रहती है । भ्रम जाल में फंसकर आप अन्याय कर बैठे, परन्तु न्याय की रक्षा के लिये कुलदेवी सदैव जागृत रहती है । देवी के प्रभाव से ही मलया के जीवित होने का यह संकेत मिला है ।''**

निमितज्ञ की एक बात सत्य सिद्ध होने से राजा के हृदय में निमितज्ञ के प्रति विश्वास आ गया । राजा ने महारानी को बुलाकर बात की । सारी बात सुनकर महारानी भी गद्‌गद् हो गई ।

वह कहने लगी-यह निमितज्ञ तो वास्तव में भविष्यवेत्ता है, अतः मलया-सुन्दरी अवश्य जीवित होनी चाहिये ।

निमितज्ञ ने कहा, ``राजन् ! मलया के स्वयंवर की पूर्ण तैयारी कर दी जाय और स्वयंवर-मण्डप को अच्छी तरह से सजा दिया जाय ।''

राजा ने तुरन्त स्वयंवर मण्डप को सुसज्जित करने के लिये आदेश दे दिया ।

राजा की आज्ञा होते ही स्वयंवर मण्डप की तैयारियां होने लगी । स्वयंवर मण्डप की शोभा में चार चांद लगाने के लिए विविध प्रकार के बहुमुल्य वस्त्र तथा साज-सज्जा का सामान लाया गया । स्वयंवर के समाचार पूरे नगर में वायु वेग से फैल गए । कुछ लोग सोचने लगे, `कन्या की प्राप्ति बिना ही राजा ने स्वयंवर की रचना प्रारम्भ कर दी है । क्या पता, कन्या मिलेगी या नहीं ? यदि न मिली तो देश-देशान्तर से आये राजकुमार गुस्से हो जायेंगे और बिना कारण एक आपत्ति आ पड़ेगी ।'

परन्तु कुछ लोग कहते थे, `निमितज्ञ ने जो संकेत दिये हैं, उनमें से पहला संकेत मिल गया है, अतः उसके वचन पर विश्वास करना ही चाहिये ।' इस प्रकार सब लोग अपना अपना मंतव्य व्यक्त कर रहे थे ।

राजा भी समय की इंतजारी कर रहा था । दूर-दूर से आए हुए राजकुमारों के आवास आदि की योग्य व्यवस्थाए कर दी गई । इस प्रकार व्यवस्था करते-करते शाम हो गई । निमितज्ञ ने कहा-, ``राजन् ! मुझे एक मन्त्र सिद्ध करना है, अतः आज की रात मैं बाहर रहूँगा । मेरा मन्त्र आधा-सिद्ध हो चुका है, अतः यदि मैं वहां नहीं जाऊंगा, तो वह मुझे सिद्ध नहीं हो सकेगा । प्रातःकाल होते ही जरुर आपके सामने उपस्थित हो जाऊंगा ।''

राजा के मन में उस निमितज्ञ के प्रति विश्वास बैठ गया हुआ था अतः उसने अनुमति देते हुए कहा,-``आप खुशी से मन्त्र सिद्ध कीजिये और उसके लिए जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो, वह भी साथ ले जाइए ।''

राजा के अति आग्रह से निमितज्ञ ने कुछ धन लिया और राजमहल से प्रयाण कर दिया । दूसरे दिन प्रातः काल होते ही वह निमितज्ञ वापस आ गया ।

राजा ने कहा-`क्या मंत्र सिद्ध हो गया ?'

निमितज्ञ ने कहा-`अभी थोडा जाप बाकी है, परन्तु कल आपको वचन दिया था, इसलिए अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ । स्तम्भ की पूजन विधि भी करनी है । अतः मैंने सोचा ``वह करके फिर चला जाऊंगा ।'' राजा उसकी बात को सुनकर दंग रह गया । ओहो ! यह कितना परोपकारी है, अपने कार्य को अधूरा छोड़कर भी स्वकथित समयानुसार यहां उपस्थित हो गया ?

राजा इस प्रकार के विचार में डूबा हुआ था, तभी एक राजसेवक, राजा के सामने आकर उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ कर कहने लगा-``स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से मैं नगर की पूर्व दिशा की ओर गया था और वहां मैंने बहुत ही सुन्दर रंगों से चित्रित एक स्तम्भ देखा है ।''

यह सुनकर राजा अत्यंत प्रसन्न हो गया ।

निमितज्ञ की ओर देखकर उसने कहा-``आपकी दूसरी बात भी सत्य सिद्ध हो चुकी है, अब उस स्तम्भ की पूजा विधि के लिए आप पधारिए ।''

निमितज्ञ ने कहा,-``मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है ।'' स्तम्भ की पूजा के लिए वह तत्काल खड़ा हो गया । महाराजा भी राजसेवक तथा निमितज्ञ के साथ नगर की पूर्व दिशा की ओर चल पडे । कुछ ही देर में राजा अपने साथियों के साथ नगर के बाहर पूर्व द्वार के निकट आ गए । उसने वहां रंग-बिरंगे चित्रों

से चित्रित छः फुट लम्बा स्तम्भ देखा ।

स्तम्भ देख राजा के आश्चर्य का पार रहा । प्रजाजन भी साथ में थे । प्रजा भी यह दृश्य देखकर दंग रह गई । कुछ लोग स्तम्भ को हाथ लगाने के लिए आगे बढ़े । परन्तु निमितज्ञ ने कहा-``अरे ! दूर हटो । स्तम्भ को कोई भी व्यक्ति न छूए, अन्यथा कुलदेवी कूपित हो जायेगी । अभी तो स्तम्भ की विधि-पूर्वक पूजा बाकी है ।'

निमितज्ञ की बात सुनकर सभी प्रजाजन भय के कारण दूर हट गये । फिर निमितज्ञ ने मंत्रोच्चार कर पूजा-विधि आरम्भ कर दी । कुछ समय ध्यानस्थ मुद्रा में रह कर उसने जाप आदि का दिखावा किया ।

निमितज्ञ की इस प्रक्रिया को देख सभी उसकी प्रशंसा करने लगे ।

कोई कहने लगा, ``कितना उपकारी है यह निमितज्ञ !''

कोई कहने लगा, ``भर यौवन में भी मन्त्र-साधना में इसकी कितनी एकाग्रता है !''

कोई कहने लगा, ``यदि यह निमितज्ञ न मिला होता तो इतना श्रम कौन उठाता ?''

प्रजाजन नाना प्रकार की बातें कर रहे थे । निमितज्ञ अपनी पूजा-विधि पूर्ण कर रहा था । राजा उसकी एकाग्रता को देखकर दांतों तले अंगुली दबाने लगा । थोड़ी ही देर में पूजा-विधि पूर्ण हो गई ।

निमितज्ञ ने आदेश दिया-, `चार व्यक्ति स्नानादि कर पवित्र वस्त्रों को पहन कर इस स्तम्भ को उठाए और इसे स्वयंवर मण्डप में स्थापित करे ।' निमितज्ञ की बात सुनकर राजा ने तत्काल चार हष्ट-पुष्ट कर्मचारियों को स्नान तथा सुन्दर वस्त्र परिधान के लिए आदेश दे दिया । राजा की आज्ञा स्वीकार कर चार कर्मचारियों ने शुद्ध जल से स्नान किया । उसके बाद सुन्दर रेशमी वस्त्र पहन कर उस स्तम्भ को उठाने लगे ।

निमितज्ञ के कथनानुसार वह स्तम्भ स्वयंवर मण्डप में उचित स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया गया । उस स्तम्भ के पास ही वज्रसार धनुष भी रख दिया गया । मंगल पाठक मंगलाचरण करने लगे । नगर में चारों ओर स्वयंवर की घोषणा हो गई । स्वयंवर के लिए विशाल मण्डप सजाया गया । सभी प्रजाजन मण्डप की ओर आगे बढ रहे थे । उनके मन में यही कुतुहल था कि

मलयासुन्दरी कहां से आएगी और कैसे आएगी ? उस मलया को कौन वरेगा ? दूर-सुदूर से आए राजकुमार अपने-अपने स्थान पर बैठ गये, लेकिन सबके मन में यह शंका थी, 'जिसको वरने के लिए हम यहां आए हैं, वह स्वयं तो यहां दिखाई नहीं दे रही है ।'

महाराजा वीरधवल अपने सिंहासन पर सुशोभित हो चुके थे । वे मंडप में बैठे राजकुमारों की ओर देख रहे थे । इधर वह निमितज्ञ (महाबल) भी अपना रुप परवर्तित कर संगीत पाठकों के बीच बैठ गया ।

राजा ने निमितज्ञ के आसन की ओर देखा परन्तु वह वहां नहीं था । राजा सोचने लगा, ''निमितज्ञ कहां गया ? कहीं वह अपने अर्द्धसिद्ध मन्त्र की सिद्धि के लिए तो नहीं चला गया ?''

महाराजा ने उसकी छान-बीन करवाई, परन्तु कहीं भी उसका पता नहीं चला । महाराजा आगंतुक राजकुमारों की ओर देखकर सोचने लगे, 'निमितज्ञ की सब बातें सही निकली हैं, परन्तु उसने कहा था कि सुरपाल के पुत्र महाबल के साथ मलया का पाणिग्रहण होगा, किन्तु महाबल तो यहां दिखाई नहीं दे रहा है ।'

तभी मन्त्रीश्वर ने घोषणा की,-''**हे परम प्रतापी राजकुमारों ! आपके सामने यह वज्रसार नाम का धनुष पड़ा है, इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर जो इस स्तम्भ के दो टुकड़े करेगा उसके साथ मलयासुन्दरी कहीं से प्रगट होकर पाणिग्रहण करेगी । यह बात हमारी कुलदेवी ने कही है ।**''

मन्त्री की घोषणा सुनते ही लाट देश का राजकुमार तेजी से आगे आया और धनुष को उठाने का प्रयास करने लगा । वह धनुष को तो न उठा सका, बल्कि स्वयं ही भूमि पर गिर पडा । यह देखकर सभी लोग हंस पड़े । वह राजकुमार भी अपना मुंह नीचा कर अपने स्थान पर आकर बैठ गया ।

तत्पश्चात गौड़ देश का राजकुमार अपनी मूछों पर बट देता हुआ आगे आया । उसने धनुष को उठा तो लिया, परन्तु धनुष के भारी होने के कारण वह स्वयं ही उसके साथ नीचे गिर पड़ा ।

फिर कर्णाटक का राजकुमार अपनी बलिष्ठ भुजाओं पर हाथ घूमाता हुआ मैदान में आ खड़ा हुआ । उसने एक ही झटके में वज्रसार धनुष को उठा लिया, परन्तु वह धनुष पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सका ।

इस प्रकार एक-एक करके सभी राजकुमार अपने बल की परीक्षा के लिए मैदान में आ गए परन्तु एक भी राजकुमार लक्ष्य को बींधने में सफल नहीं हुआ । सभी राजकुमारों ने अपना-अपना आसन ग्रहण कर लिया । प्रजा सोच रही थी कि कहीं यह स्वयंवर निष्फल न चला जाय । वातावरण में सन्नाटा छा गया । तभी एक वीणा-वादक स्तम्भ की पीठिका के पास पहुंचा और मधुर स्वर से अपनी वीणा बजाने लगा । वीणा के स्वर सभी को मोहित करने लगे । सभी की दृष्टि उस वीणा वादक पर स्थिर हो गई ।

कुछ समय बाद वीणा-वादक ने नमस्कार महामन्त्र का ध्यान कर एक ही झटके से उस धनुष को उठा लिया और उस पर प्रत्यंचा चढ़ा कर स्तम्भ पर निशान ताक कर बाण छोड़ दिया ।

उसी समय स्तम्भ के दो टुकडे हो गये और उसमें से सोलह श्रृंगार युक्त, गले में लक्ष्मीपुंज हार पहनी सजी, हाथ में वरमाला ली हुई, मलया-सुन्दरी प्रगट हुई । महाराजा वीरधवल और चंपकमाला अत्यन्त खुश हो गए, उनकी आखों में हर्ष के आंसू बह रहे थे । मलयासुन्दरी ने आगे बढ़कर अपने पिता वीरधवल और माता चंपकमाला के चरणों में नमस्कार किया ।

प्रजाजन यह दृश्य देखकर अवाक् रह गये । अंधकूप में गिरी राजकन्या को स्तम्भ के बीच पाकर, वे इसे कुलदेवी का चमत्कार मानने लगे ।

चंपकमाला ने कहा-``हे पुत्री ! मैं तुम्हारी वैरीनी बनी और तुझे अंधकूप में डलवा दी, परन्तु तूं अपने पुण्य प्रभाव से इस स्तम्भ में से प्रकट हो गई । लगता है कुलदेवी ने तुम्हारी रक्षा की होगी ।''

मलया ने कहा-``हां माताजी ! यह सब अपनी कुलदेवी की कृपा का ही फल है । उसीने मुझे बचाया है और उसीने मुझे इस स्तम्भ में ला खड़ी की है ।''

राजा सोचने लगा-``निमितज्ञ ने ये सब बातें कहीं थी, उसकी सब बातें सत्य निकली, किन्तु महाबल के वर होने की उसकी बात....। इस स्तम्भ को तो इस वीणा-वादक ने भेदा है, अतः यही इसका वर...।'' राजा यह सोच ही रहा था, कि मलयासुन्दरी ने वीणा-वादक के गले में वरमाला डाल दी ।

एक वीणा-वादक के गले में वरमाला का आरोपण देख सभी राजकुमार गुस्से में आ गये और एक स्वर में कहने लगे-``हे राजन् ! इतने क्षत्रिय राजकुमार होने पर भी यदि एक क्षत्रिय कन्या एक वीणा-वादक को वरती है, तो

यह हमारा घोर अपमान है। हम इस अपमान को सहन नहीं करेंगें, इस गांधर्व के पास से तुम्हारी कन्या को हर लेंगे।''

यह सुनकर वीरधवल राजा घबरा गया। उन राजकुमारों को मार भगाने के लिये उस वीणा-वादक ने वज्रसार धनुष उठाया, तब सभी राजकुमार वहां से भाग गए। महाराजा उसके पराक्रम को देख आश्चर्य चकित हो गए।

राजकुमारों को भगाने के बाद वीणा वादक के रुप में रहे महाबल ने अपने मुंह में से गुटिका बाहर निकाल ली और वह अपने वास्तविक रुप में आ गया। उसे अपने मूल रुप में देखकर पास खडे एक भट्टपुत्र ने कहा-, **'स्वामिन्! ये तो महाराजा सुरपाल के पुत्र राजकुमार महाबल है।'**

यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने भाग रहे राजकुमारों को बुलाकर कहा, ''मलयासुन्दरी ने जिसके साथ पाणिग्रहण किया है, वह महाराजा सुरपाल के पुत्र राजकुमार महाबल ही है।''

राजा की इस बात को सुनकर सभी राजकुमार वापस लौट आये। महाराजा ने आगन्तुक सभी राजकुमारों को भोजन के लिये आमन्त्रित किया। सभी ने बड़े ही आनन्द के साथ भोजन किया। महाराजा का हृदय आनन्द से भर आया। उस निमितज्ञ के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह उमड पडा था। वे उसका योग्य सत्कार करना चाहते थे। उन्होंने अपने नौकरों को आदेश देकर उस निमितज्ञ की छानबीन करवाई परन्तु वह निमितज्ञ उन्हें कहीं भी न मिला। मिले भी कहां से ? वह तो स्वयं महाबल ही था।

बहुत खोजने के बाद भी जब उस निमितज्ञ का पता नहीं चला, तब राजा अपने मन में ही बोला, 'धन्य है उस निमितज्ञ को, जिसने मुझे जान से बचा दिया और मेरी पुत्री मलयासुन्दरी प्राप्त करा दी। **यह धरती ऐसे सत्पुरुषों के सत्कृत्यों से ही टिकी हुई है। ये सत्पुरुष ही तो इस पृथ्वी के महान् श्रृगांर है।'**

इधर राजा ने महाबल और मलयासुन्दरी के विवाह की तैयारियां प्रारंभ की। नगर में चारों ओर आनन्द छाया हुआ था। मलयासुन्दरी के साक्षात् दर्शन कर सभी प्रजाजन अपने आपको बड़भागी मान रहे थे। कोई कह रहा था, मलयासुन्दरी ने **'सत्यमेव जयते'** की उक्ति को चरितार्थ कर दिखलाई है। यह कैसी सुशील और पवित्र कन्या है, मरणान्त आपत्ति में कुलदेवी ने जिसकी रक्षा की है।

महाराजा के आदेश से संपूर्ण नगर सजा दिया गया । नगर की नवयौवना कन्याएं विवाह के सुरीले गीतों से वातावरण को खुशी से भर रही थी । चारों ओर सुमधुर वाद्य-यंत्र बज रहे थे ।

विवाह के विधि-विधान के लिए सुयोग्य राज पुरोहित विवाह-मण्डप में आ चुके थे । महाराजाधिराज वीरधवल और महारानी चंपकमाला ने योग्य आसन ग्रहण किया । उस विवाह के भव्य दृश्य को देखने के लिए चारों ओर से भीड़ उमड़ पडी थी । लोग अपनी भूख-प्यास सब भूल चुके थे ।

शुभ मुहूर्त के आगमन के साथ ही मांगलिक-श्लोकों के साथ राज पुरोहित ने मन्त्रोच्चार प्रारम्भ किया । महाबल और मलयासुन्दरी दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से इस प्रकार सुशोभित थे, मानो कामदेव और रति प्रत्यक्ष रूप में धरती पर आ गए हो । राष्ट्र और समाज के विशिष्ट व्यक्ति नूतन वर-वधु को आशीर्वाद दे रहे थे ।

विवाह विधि की समाप्ति के बाद महाराजा की ओर से आयोजित विशाल भोजन मण्डप में सभी प्रजाजन पहुंच गये । सभी ने आनन्द पूर्वक भोजन किया । महाराजा ने अनेक हाथी, घोड़े, रथ, मोती, माणक, स्वर्ण, रजत आदि के आभूषण और अन्य बहुमूल्य वस्तुएं कन्यादान में प्रदान की । विवाह-मण्डप से उठ कर नव दम्पति जब राजमहल में पधारे, तब महाराजा ने महाबल की ओर देखकर प्रश्न किया, 'हे राजकुमार ! इस स्वयंवर के शुभ अवसर पर आप अकेले ही क्यों आए ?'

महाबल ने कहा, 'मैं विशेष कुछ नहीं जानता हूं, मुझे लगता है कि आपकी कुलदेवी बहुत ही जागृत है और उसी ने मुझे यहां लाकर छोड़ दिया है ।'

महाराजा मुस्कराते हुए बोले - 'ओहो ! सचमुच यह कुलदेवी का प्रभाव लगता है, अन्यथा इतनी दूरी से आप यहां अचानक कैसे आते ?'

कुछ गंभीर मुद्रा का दिखावा कर कुमार बोला, 'राजन् ! मेरे माता-पिता का मुझ पर अपार स्नेह है, वे मेरे विरह को सहन नहीं कर पाते, मैं उनकी सेवा और दर्शन के बिना नहीं रह सकता, अतः मुझे बारह प्रहर के अन्दर ही पृथ्वीस्थानपुर पहुंचना होगा, अन्यथा मेरे विरह को सहन नहीं करने वाले मेरे माता-पिता अपने प्राणों का त्याग कर देंगे । अतः मुझे प्रतिपद (एकम्) के दिन तो वहां पहुंचना ही होगा ।'

पितृ-भक्ति और मातृ-भक्ति से ओत-प्रोत महाबल की इस बात को सुनकर महाराजा ने कहा, `कुमार ! अपने माता-पिता को मृत्यु से बचाने के लिए आपको वहां अवश्य जाना चाहिए, किन्तु कुछ धैर्य रखो । अभी रात्रि का प्रारम्भ हो रहा है । एक दो प्रहर तो यहां ठहरो । यहां से आपका नगर बासठ योजन की दूरी पर है, मैं अभी जाता हूँ और एक तेज दौड़ने वाली सांडनी (ऊंटनी) तैयार करवाता हूँ ।' इतना कह कर महाराजा वहां से चले गये ।

महाबल और मलयासुन्दरी राजमहल के एकांत खण्ड में बैठे हुए थे, रात्रि का प्रारम्भ हो चुका था । दोनों के हृदय आनन्द से भरे हुये थे ।

`प्रिये ! तेरा स्वप्न साकार हो गया न ?' महाबल ने प्रश्न किया ।

`आपके बुद्धि-बल और कला कौशल से आज का यह संयोग संभव हो सका है ।' मलया ने जवाब दिया ।

`प्रिये ! याद है न वह मेरी प्रतिज्ञा ? तुम्हारे माता-पिता का आशीर्वाद मिलने पर ही तुम से विवाह करुंगा, वह प्रतिज्ञा आज साकार हो गई ।'

महाबल और मलया प्रेम भरी बातें कर रहे थे, तभी अचानक दूर से एक स्त्री आती हुई दिखाई दी । निकट आते ही मलया उसे पहिचान गई और उसे गले लगाती हुई बोली, `अरी वेगवती ! तूं कुशल तो है न ?'

वेगवती बोली, `हे सखी ! तीन दिन तक मैं तुम्हारे विरह में अत्यन्त विलाप करती रही, मेरी आंखो से अश्रुधारा बहती रही । परन्तु ज्योंहि स्वयंवर मण्डप में तुम्हारे दर्शन हुए, मेरे आनन्द का पार नहीं रहा । मेरा हृदय तुम को मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक था । दिनभर तो आपसे मिलना सम्भव न हो सका, परन्तु अब अपने आपकी रोक न सकी, अतः मिलने के लिए आ गई हूं ।'

मलया ने उसे ढाढस बंधाते हुए कहा,-`तूं जानती है कि कर्मों की गति बड़ी विचित्र है और उसी का यह नाटक है । हम सब तो उस नाटक के पात्र है ।'

वेगवती बोली,-`मैं जानती हूँ कि आप तत्वज्ञाता है और इसी कारण इतनी गंभीर हो । परन्तु मैं तो आपकी आपबीती सुनना चाहती हूँ ।'

मलया ने महाबल को वेगवती का परिचय कराते हुए कहा, ``यह मेरी मुख्य दासी है और अत्यन्त ही गंभीर है । अतः उसके सामने कुछ भी कहने में संकोच रखने की आवश्यकता नहीं है ।''

तब महाबल ने मलया से पूछा, `तूं ने लक्ष्मीपूंज हार कैसे प्राप्त किया ?'

मलया ने कहा-`स्वामिन् ! पहले आप इसे यह बता दिजीए कि आपने महाराजा को कैसे बचाया ?

महाबल ने सारी बातें विस्तार से कह दी । मलया को उसने किस अवस्था में पाया ? उसने कैसे निमितज्ञ का रुप किया ? हाथी की विष्ठा में से मलया की अंगूठी कैसे निकली ? राजा को कैसे समझाया ? आदि-आदि । उसने कहा, `ज्योंहि मैंने भट्टारिका मन्दिर के बाहर वह काष्ठफाल देखा, मन्त्र साधना का बहाना बनाकर और रंग-रोगन आदि का सामान साथ लेकर मैं उस भट्टारिका मन्दिर के पास चला गया ।' घण्टों तक मैंने उस काष्ठफाल को साफ किया और उसके बाह्य भाग में सुन्दर रंगीन चित्र बनाये । उस काष्ठफाली के गर्भगृह में एक कीलिका भी लगा दी, जिसको निकाल देने से उस काष्ठफाली के दो विभाग हो जाते थे ।

रात्रि के प्रथम प्रहर के समाप्त होने की तैयारी थी, अचानक मैंने कुछ चोरों का वार्तालाप सुना । वे चोर नगर से बहुत-सा धन चुरा कर लाए थे, उनके पास एक बड़ी पेटी भी थी । मुख्य सरदार ने एक चोर को आदेश दिया कि तुम यहीं रहना, हम नगर में वापिस लूटने के लिए जा रहे है, सामान का ध्यान रखना । चोर ने सरदार की बात में हां भर दी और सरदार चोरों के साथ नगर की ओर चला गया ।

तभी मेरी नजर उस चोर पर पड़ी । वह चोर उस सन्दूक के ताले को तोड़ना चाहता था और उसमें रहे माल को लेकर छू मंतर होना चाहता था । मैंने भी चोर की भाषा में संकेत किया । चोर ने सोचा, `यह भी कोई मेरे जैसा ही चोर है, अतः उसने मुझे सहायता के लिए अपने पास बुला लिया । मैंने अपने औजारों की सहायता से उस सन्दूक का ताला तोड़ दिया । उसमें रहा हुआ धन उस चोर ने निकाल लिया ।

चोर ने कहा, `हमारा सरदार हमसे बहुत काम लेता है, परन्तु हमें बहुत कम देता है । अतः इस माल के साथ आप मुझे कहीं छुपा दें, तो मैं आपका बहुत उपकार मानूंगा ।'

मुझे उस पर दया आ गई । मैंने उस चोर को मन्दिर के ऊपरी भाग में

आने को कहा । वह चोर वहां आ गया और मैंने शिखर का बड़ा पत्थर हटा कर उसे वहां छुपा दिया । उसके बाद मुझे दो व्यक्तियों की पदचाप सुनाई दी । मैं चुपके से वट वृक्ष के पीछे छुप गया । पदचाप निकट आने पर मालूम हुआ कि यह तो पुरुष वेष में मलयसुन्दरी है तथा एक अन्य स्त्री उसके साथ है ।

इतनी बात कहकर महाबल ने कहा, `प्रिये तुमने कनकवती से लक्ष्मीपुंज हार कैसे प्राप्त किया ?'

मलयासुन्दरी ने कहा, `हे स्वामिन् ! भट्टारिका मन्दिर के पास सोमा दासी से जब हमे पता चला कि वह लक्ष्मीपुंज हार कनकवती के पास है और वह कनकवती मगधा वेश्या के घर है । मैं पुरुष वेष में संध्या समय उस वेश्या के घर चली गई । मार्ग में अनेक व्यक्तियों से पूछने के बाद मुझे उस वेश्या के घर का पता चला । मैंने देखा, `वह मगधा वेश्या एक देव कुलिका में बैठी हुई है ।' सैंकड़ों युवको के मन को मोहने वाली उस मगधा को देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसके चेहरे पर उदासीनता छाई हुई थी । चेहरे से ऐसा लगता था, मानों वह किसी मुसिबत में फंसी हुई हो ।'

मैं उस मगधा के पास बैठ गई । मेरे तेजस्वी और प्रतिभा सम्पन्न चेहरे को देखकर वह मेरे प्रति आकर्षित हुई । मैंने उसे स्नेह भरे शब्दों में पूछा, `आज तुम इतनी उदास क्यों हो ?'

उसने सोचा, `यह प्रतिभा-सम्पन्न तेजस्वी व्यक्ति अवश्य मेरी सहायता करेगा ।

उसने कहा, `एक धूर्त व्यक्ति ने मुझे आपत्ति में डाल दिया है, जिसके कारण मैं अत्यन्त व्यथित हूँ ।'

मैंने कहा, `उस धूर्त ने तुझे कैसे फंसा दिया ?'

मगधा बोली, `मैं कल रात अत्यन्त थकी हुई थी, आराम के लिए मैं उस देव कुलिका में आई तो अचानक वह धूर्त यहां आ पहुंचा ।' मैं नहीं समझ सकी कि यह एक धूर्त है । मैंने उसे कहा, `यदि तूं मेरे शरीर की मालिश करेगा तो मैं तुझे कुछ दूंगी ।'

उसने मेरी बात स्वीकार कर मेरी मालिश की । मैं उसे दस स्वर्ण मुद्रा देने लगी तो उसने वे मुद्रायें लेने से इन्कार कर दिया और बोला, `तूंने मुझे **`कुछ'** देने के लिए कहा था अतः मुझे कुछ दो । मैंने बहुत-सी मूल्यवान वस्तुएं लाकर उसके सामने रखी, किन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया है और केवल

'कुछ' देने के लिए हठाग्रह करने लगा । मैं उससे अत्यंत परेशान हो चूकी हूँ ।

मैंने सोचा,-`मगधा अभी आपत्ति में है, यदि मैं इसकी सहायता करुंगी तो यह भी मेरी अवश्य सहायता करेगी ।'

अतः मैंने उस वेश्या को आश्वासन देते हुए कहा,-`अभी तुम दोनों भोजन करो, दिन के तीसरे प्रहर में तुम दोनों का समाधान हो जायेगा ।'

ऐसा कहकर मैं वहां से अलग हो गई । मैंने एक काला सर्प मंगवाकर घडे में डलवा दिया । दोपहर का समय हुआ । मेरे न्याय को सुनने के लिए आस पास से कई लोग इकट्ठे हो गए । मगधा और वह धूर्त भी वहां आ गया ।

मैंने कहा, `देखो, मगधा ने उस व्यक्ति को **कुछ** देने को कहा है, उसने वह **कुछ** उस कोने में पड़े घड़े में रखा है, अतः इस व्यक्ति को आज्ञा करे कि वह उस कोने में पड़े घड़े में से कुछ निकाल कर ले लेवे ।

तत्काल वह धूर्त घड़े की ओर बढ़ा । घड़े का ढक्कन हटा कर उसने अपना हाथ ज्योंही घड़े में डाला कि काले नाग ने उसके हाथ पर डंख मारा और वह चिल्लाया, `अरे ! कुछ है । कुछ है, कुछ है ।' ज्योंहि उसने कहा, `इसमें कुछ है, त्योंहि मैंने कहा, `उस कुछ को लेकर घर चले जाओ ।' बेचारा धूर्त अपनी धूर्तता के कारण स्वयं ठगा गया ।

दुनिया में जो व्यक्ति दूसरों को ठगना चाहता है, वह स्वयं ही ठगा जाता है ।

``उस धूर्त को न तो धन मिला और न ही अन्य कुछ । व्यर्थ ही उसके प्राण संकट में गिर गए । उपस्थित लोगों ने भी कह दिया कि उसको अपना **'कुछ'** बराबर मिल गया है । फिर उस धूर्त को अन्य स्थल पर ले जाया गया और किसी तांत्रिक को बुला कर बड़ी कठिनाई से उसके प्राण बचाये गए ।''

उस धूर्त के फंदे से बच निकलने पर मगधा के आनन्द का पार न रहा, वह मेरे पैरों में गिर पड़ी और मेरा उपकार मानने लगी ।

उसने कहा-``हे उपकारी पुरुष ! आपने मुझे आपत्ति से बचाया है, अतः आप मेरे घर पधारो ।'' मैंने उसके साथ उसके घर की ओर प्रयाण किया । परन्तु उसका घर आते ही मैं द्वार पर रुक गई ।

उसने कहा-``आइये, पधारिये ।''

मैंने कहा-``मैं इस घर में नहीं आ सकूंगा ।''

उसने कहा-``क्यों ?''

मैंने कहा, `क्योंकि तुम्हारे घर में कोई राजद्रोही छुपा हुआ है, ऐसी मुझे गंध आ रही है ।'

यह सुनकर मगधा घबराती हुई बोली-`आप तो दिव्यज्ञानी हो । यह बात आप किसी को मत कहना । महाराजा की इकलौती पुत्री मलयासुन्दरी को मरवा कर भाग कर आई हुई रानी कनकवती ने मेरा आश्रय लिया है । मैं उसे रखना नहीं चाहती, परन्तु निकालू भी कैसे ?' ``हे परोपकारी ! आप ही मुझे । इस कार्य में सहायता करे, मैं आपके इस उपकार को कभी नहीं भूलूंगी ।''

मैंने कहा-``मैं उसे बाहर कैसे निकालूं ?'' इस प्रकार बाहर निकालने से तो मेरे प्रति उसके हृदय में वैर भाव उत्पन्न हो जायेगा और उसको निकालते हुए कोई देख ले तो हम दोनों आपत्ति में फंस जायेंगे । फिर भी रात्रि में, एकांत में मुझे उससे मिलाना । यदि कोई युक्ति बैठ गई तो जरुर तुझे बता दूंगा ।''

कनकवती, मगधा वेश्या के भीतरी खण्ड में छुपी हुई थी । संध्या का समय हुआ । सूर्य अस्ताचल की ओर आगे बढा और थोडी ही देर बाद आंखों से ओझल हो गया । आकाश में तारे टिमटिमाने लगे, चन्द्रमा अपनी चांदनी से पृथ्वीतल को आच्छादित करने लगा ।

कनकवती अत्यन्त कामुक नारी थी । भीतरी खण्ड के द्वार के किसी छिद्र से उसने मुझे देख लिया । मुझे देखते ही वह काम विह्वल हो उठी । उसने मगधा को संकेत किया कि वह आगंतुक को उसके पास भिजवा दे । पुरुष वेष में होने से वह मुझे पहिचान नहीं पाई । वह मेरे रुप पर मोहित हो चुकी थी ।

उसने मुझे कहा-``आप कौन हैं ? कहां से आये हैं ?''

मैंने अपना झूठा परिचय देते हुए कहा-``हम दो मित्र विदेश भ्रमण के लिए निकले हुए हैं । मैं अचानक ही यहां आ पहुंचा हूँ ।''

मैंने देखा ``वह कामाग्नि से अत्यन्त विह्वल हो चुकी है ।'' उसने मुझसे काम की याचना की ।

मैंने कहा-``भद्रे ! मेरा एक मित्र मेरे साथ है, वह मुझ से भी ज्यादा सुंदर और साक्षात् कामदेव का अवतार है । यदि तुम चाहो तो वह तुम्हें संतुष्ट

कर देगा । वह आज रात को भट्टारिका मन्दिर में आयेगा, अतः तुम्हारी इच्छा हो तो वहां चले आना । यदि वह न आया तो फिर मैं तो हूं ही ।''

कनकवती को मुझ पर विश्वास आ गया, अतः उसने दिल खोलकर सब बातें कह दी । मैं भी उसकी हर बात में हां में हां भरती गई । इस प्रकार बाद करते-करते आधी रात बीत गई । अति विश्वास के कारण कनकवती ने अपना सारा सामान लाकर मुझे दिखा दिया । मैंने वह सब सामान ध्यानपूर्वक देखा, किन्तु उसमें लक्ष्मीपुंज हार नहीं था । मैंने कहा-``क्या इतना ही सामान है अथवा और भी कुछ है ?''

उसने कहा-``एक लक्ष्मीपुंज हार जरूर है, परन्तु वह चौराहे की टूटी-फूटी दिवाल में छुपा दिया है । मैं राज भय से बाहर नहीं निकल सकती, अतः आप ही उस स्थान पर जाकर वह हार ले आओ ।''

कनकवती के संकेतानुसार मैं उस स्थान पर गया, किन्तु वहां मुझे वह हार नहीं मिला, मैं खाली हाथ लौट आई । घर में पुनः प्रवेश करते समय मगधा भी मुझे मिल गई ।

मैंने उससे कहा, `कनकवती स्वतः यहां से निकल जायेगी और रोकने पर भी यहां नहीं रुकेगी ।'' इतना कहकर मैं पुनः कनकवती के खण्ड में आ गई ।

मैंने कहा-``मुझे तो वह हार नहीं मिला, अतः तुम ही वह हार लेकर आ जाओ ।''

कनकवती ने मेरी बात मान ली और मैं आगे बढ़ गई । बीच में मैं मार्ग भूल गई । परन्तु भाग्य योग से भट्टारिका मन्दिर के पास मैंने कुछ दूरी पर ही कनकवती को आते देख ली ।

मैंने आपको (महाबल को) कहा-``कुमार ! आपको पति बनाने की इच्छा से, कनकवती लक्ष्मीपुंज हार सहित यहां आ रही है ।''

आपने ने कहा-``ऐसी दुष्टा से तो बात करने में भी पाप है ।'' तभी मैंने देखा कि कनकवती अत्यन्त निकट आ चुकी है । उसे निकट आती हुई देखकर आप (महाबल) तत्काल दिवाल की ओट में छुप गए ।

कनकवती मेरे पास आई । मैंने उसे कहा-``कुछ चोरों की आहट सुनाई दे रही है, अतः तुम्हारे पास जो भी कीमती वस्तु है, वह मुझे दे दो ।''

विश्वास में आकर कनकवती ने वह लक्ष्मीपुंज हार मुझे सौंप दिया। हार को देख, मेरे आनन्द का पार नहीं रहा।

भट्टारिका मन्दिर में प्रवेश होते ही कनकवती को मैंने कहा-``यहां कई चोर घूम रहे हैं, शायद तुझे देख न लें, अतः तूं इस पेटी में घुस जा। उनके चले जाने पर तुझे निकाल दूंगा।''

कनकवती उस पेटी में घुस गई और मैंने तत्काल उस पेटी को बन्द कर ताला लगा दिया। मैंने आपको ईशारा किया और आपको हार देते हुए बोली-``यह लीजिये अपना अभीष्ट हार।''

``परन्तु कनकवती कहां है ?'' आपने पूछा।

``उसे इस पेटी में बन्द कर दिया है'', मैंने जवाब दिया।

फिर हम दोनों ने उस पेटी को गोला नदी में बहा दी। तभी आपने अपने थूंक से मेरा तिलक मिटा दिया और मैं पुनः स्त्री वेष में आ गई। मैंने सुन्दर वस्त्र पहने। गले में लक्ष्मीपुंज हार डाला। हाथ में वरमाला ली और सुन्दर ढंग से सज-धज कर तैयार हो गई। फिर आपकी आज्ञा से उस काष्टफाली में बन्द हो गई। उस समय आपने ने मुझे कहा था **``मैं वीणा-वादक के वेष में जब वीणा बजाऊं और धनुष छोडूं तब तुम यह कीलिका निकाल देना, ऐसा करने पर तुम स्वतः बाहर आ जाओगी।''**

प्रियतम की आज्ञा स्वीकार कर और नमस्कार महामन्त्र का ध्यान कर मैं उस काष्टफाली में गर्भावास की तरह बन्द हो गई, फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ ?''

तब महाबलकुमार ने कहा-``उस काष्टफली में बन्द करने के बाद वे चोर पुनः वहां आये और उन्होंने उस छीपे हुए चोर की तलाश की। अन्त में उन्होंने मुझ से पुछा, `वह चोर और पेटी कहां हैं ?'

मैंने कहा, ``पहले मेरा एक काम करो तो मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूं।''

उन्होंने मेरी बात मान ली।

मैं ने कहा, ``इस स्तम्भ को सावधानी से उठाओ और मेरे पीछे-पीछे चलो।''

मैं नगर के पूर्व द्वार के पास आ गया और सुरक्षित स्थान पर उस स्तम्भ को रखवा दिया। फिर भट्टारिका मन्दिर में आकर मैंने कहा, उस चोर ने

पेटी में से माल निकाल लिया और उस पेटी को पानी में बहाकर, स्वयं भी उस पेटी पर बैठकर यहां से चला गया ।''

मैंने यह सब झूठ बोला, क्योंकि सत्य कहने पर वे उस चोर को मार सकते थे ।

मेरी बात पर विश्वास कर वे सब चोर अन्यत्र चले गये । मैंने रात्रि में उस स्तम्भ की रक्षा की और जब देखा कि राज कर्मचारी उस स्तम्भ की ओर आ रहे हैं, मैं वहां से निकल पड़ा । राजा को मिलने के लिए राजमहल में आ पहुंचा । उसके बाद का वृत्तांत तो वेगवती जानती है, वह तुम्हें सुना देगी ।

इतना कहकर महाबलकुमार खड़े होकर बोले-``अहो ! उस मन्दिर के शिखर में छुपाये उस चोर को तो निकाला ही नहीं है, बेचारा कहीं मर जाएगा । अतः मैं जाता हूँ और उसे निकाल कर वापिस लौटता हूँ ।''

मलया बोली-``स्वामिन् ! अब यह कभी संभव नहीं है । मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती । अतः यदि आप जाओगे, तो मैं भी आपके साथ आऊंगी ।''

मलया ने वेगवती से कहा-``हम दोनों भट्टारिका मन्दिर में दर्शनार्थ जा रहे हैं, अतः यदि महाराजा आ जायें तो उन्हें यह बात कह देना ।'' इतना कहकर महाबलकुमार और मलयासुन्दरी वहां से निकल पड़े ।

इधर महाराजा वीरधवल तीव्र रफ्तार वाली सांडनी को तैयार कर समय पर आ गये । उन्होंने देखा, ``न तो महाबल कुमार हैं और न ही मलयासुन्दरी ।''

उन्होंने वेगवती से पूछा-``सुन्दरी कहां है ?''

वेगवती ने कहा-``उन्होंने भट्टारिका देवी की मनौती की थी, अतः उसके दर्शनार्थ गये हैं ।''

राजा ने उन दोनों की तलाश की परंतु काफी किन्तु बहुत समय बीतने पर भी न तो महाबलकुमार वापस लौटा और न मलयासुन्दरी ।

राजा की चिन्ता पुनः बढ़ गई ।

卐

११. आश्चर्यों की परम्परा

मध्य रात्रि में राजमहल से प्रयाण कर महाबल और मलयासुन्दरी गोला नदी के किनारे आ गये थे। चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ था। जंगली क्रूर पशुओं की चित्कारें सुनाई दे रही थी। गोला नदी, कल-कल की मधुर ध्वनि के साथ बह रही थी।

महाबल ने देखा, `वातावरण अत्यन्त ही भयंकर है, अतः इस भयानक वातावरण में मलयासुन्दरी का स्त्री वेष में रहना उचित नहीं है। उसने मलया से कहा-``प्रिये ! इस भयाकुल वातावरण में तुम्हें स्त्री वेष में रहना ठीक नहीं है, अतः कहो तो तुम्हारे रुप का परिवर्तन कर दूं।''

मलया बोली-**``हे नाथ ! यह जीवन अब आपके चरणों में समर्पित हो चुका है, आप जो चाहे वह करें, इसमें मेरी सम्मति की आवश्यकता नहीं है।''**

मलया के कहने पर महाबल ने पास ही खड़े आम्र वृक्ष से एक आम तोड़ा और उसके रस में गुटिका घिस कर उसने मलया के मस्तक पर तिलक कर दिया, जिससे वह एक रुपवान् पुरुष के रुप में बदल हो गई।

फिर महाबल और मलया दोनों भट्टारिका मन्दिर में पहुंचे। महाबल मन्दिर के ऊपरी भाग में चढ गया। उसने अपनी शक्ति से शिखर को हटा दिया। उसमें रहा चोर भूख और प्यास से अत्यन्त पीडित था।

कुमार ने उस चोर को बाहर निकाल कर कहा-``तुम्हारे साथी यहां आये थे। मैंने उन्हें झूठा जवाब दे दिया और वे यहां से चले गये हैं, अब इस माल के साथ तुम सुरक्षित स्थान पर जा सकते हो।''

वह चोर महाबल के पैरों में गिर पड़ा। उसने कहा-``आपका मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है। आपने मुझे जीवन और धन दिया है। भविष्य में, मैं अवश्य ही आपके इस उपकार को चुकाने का प्रयत्न करुंगा।'' इतना कहकर वह चोर वहां से रवाना हो गया।

इधर कुमार और मलया भी नगर की ओर चल पडे। मार्ग में उन्हें विशाल वट-वृक्ष पर बैठे प्रेतों का वार्तालाप सुनाई दिया।

वार्तालाप को सुनने की जिज्ञासा से कुमार ने मलया से कहा-``प्रिये ! आओ, हम दोनों इस वृक्ष के कोटर में बैठ जाए और इन प्रेतों का वार्तालाप

सुनें । दोनों ने तत्काल उस वट वृक्ष के कोटर में अपना स्थान ग्रहण कर लिया ।

दुनिया की अजीब घटनाओं को सुनने की जिज्ञासा से एक भूत ने कहा-``कहो भाई ! क्या आज-कल तुमने कोई नवीन घटना देखी है ?''

दूसरा प्रेत बोला, ``हां, देखी है । मैं अभी-अभी पृथ्वीस्थानपुर से आ रहा हूँ । वहां का राजा सुरपाल है और महारानी पद्मावती है । पांच दिन पूर्व ही महारानी का लक्ष्मीपुंज हार खो गया था अतः महारानी ने प्रतिज्ञा की है कि यदि पांच दिन के भीतर हार नहीं मिला तो वह अपने प्राणों का त्याग कर देगी । माता की प्रतिज्ञा सुनकर महाबलकुमार ने भी यह प्रतिज्ञा की है कि यदि वह पांच दिन के अन्दर हार नहीं लाएगा, तो वह भी अग्नि में प्रवेश कर मर जायेगा । कल पांचवा दिन पूरा होने वाला है परन्तु न तो हार का पता चला है और न ही महाबलकुमार का । मुझे ऐसा लगता है कि कल दोपहर को महारानी अपने प्राणों का त्याग कर देगी ।''

महाबल ने ज्यों ही अपना नाम सुना, वह चौंक उठा ।

उसने मलया से कहा-``यह तो मेरी बात हो रही है ।''

तभी एक भूत बोला-``अच्छा ! यदि महारानी मरने वाली है, तो हम भी चलें । जरा देखें तो सही, वह कैसे अपने प्राण छोड़ती है ?''

दूसरा भूत बोल उठा-``ओ वट वृक्ष ! चल उठ यहां से ! हमें लेकर चल ।'' तत्काल वह वट वृक्ष आकाश मार्ग से उड़ने लगा ।

महाबल ने सोचा-``ठीक है । पृथ्वीस्थानपुर जल्दी पहुंच जाऊंगा और अपनी मां को बचा लूंगा ।''

मनुष्य सोचता कुछ और है और बनता कुछ और ही है । सम्पूर्ण विश्व पर कर्मसत्ता का अखंड साम्राज्य छाया हुआ है, उसकी व्यवस्था में मनुष्य की इच्छा पंगु बन जाती है ।

महाबल को कहां पता था कि माता-पिता से मिलन के पूर्व उसे एक भारी कसौटी में से पार होना पड़ेगा । वह मातृ-मिलन के स्वप्न देख रहा था, लेकिन प्रकृति को यह मंजूर नहीं था ।

वह वट वृक्ष आकाश मार्ग से आगे बढता हुआ थोडी देर में पृथ्वी-स्थानपुर के निकट उद्यान के बाहर आकर रुक गया और धरती पर स्थिर हो गया ।

महाबल ने कहा, ``प्रिये ! अपना भाग्य अनुकूल है, हम इतने जल्दी यहां आ पहुंचे । अब प्रातःकाल होते ही मां से मिलना हो जायेगा । मां की इच्छा पूर्ण हो जायेगी और मातृ स्नेह से मुझे अपार आनन्द और तृप्ति का अनुभव होगा । परन्तु हमें इस कोटर से जल्दी नीचे उतर जाना चाहिये । ऐसा न हो कि यह वृक्ष कहीं ओर उड़ जाये । देव माया का कोई विश्वास नहीं ।''

महाबल और मलयासुन्दरी उसी समय नीचे उतर गए ।

अपने चिरपरिचित क्षेत्र का परिचय देते हुए महाबल बोला-``ओहो ! यह तो वह वृक्ष है, जहाँ बचपन में हम आंख-मिचौनी खेलते थे और यह वह सुहावना सरोवर हैं, जिसमें हम अनेक बार स्नान करते थे ।' इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों उद्यान की ओर आगे बढ़े ।

महाबल ने कहा, `रात अंधेरी है । नगर के द्वार बन्द होंगे । अतः नगर की ओर जाने के बजाय थोड़ी देर इस उद्यान में आराम कर लें ।''

मलया ने पति की बात में हाँ भर दी । दोनों उद्यान की ओर आगे बढ़े । परन्तु तभी उन्हें करुण रुदन सुनाई दिया । दोनों ने उस आवाज की ओर ध्यान दिया ।

महाबल ने कहा-``अरे ! यह तो किसी स्त्री की आवाज लगती है । शायद कोई स्त्री भयंकर आपत्ति में फंस गई है अतः हमें उस ओर अवश्य जाना चाहिये । आपद्ग्रस्त की सहायता करना हमारा कर्तव्य है ।''

महाबल के इस विचार से हमें उसकी परोपकार वृत्ति का स्पष्ट ख्याल आता है । महाबल एक निर्भीक, साहसिक और परोपकारी पुरुष था । स्त्री के करुण रुदन ने उसके मजबूत ह्रदय को पिघला दिया ।

उसने मलया को कहा-``प्रिये ! तू यहीं बैठ । मैं इस आपद्ग्रस्त स्त्री की ओर जाता हूँ और देखता हूँ, क्या घटना बनी है ?'' मैं उस आपद्-ग्रस्त स्त्री की आपत्ति का निवारण कर तुरन्त ही लौट आऊंगा । तुम मेरे जाने से पहले मेरे वस्त्र और कुण्डल धारण कर लो और लक्ष्मीपुंज हार मुझे सौंप दो ।' **कई बार व्यक्ति सोचता अच्छे के लिए है, परन्तु हो जाता है बुरे के लिए ।**

किसी शुभ भावना से महाबल ने मलया को कुण्डल दिये परन्तु वे ही कुण्डल मलया के लिये भयंकर आपत्ति का कारण बन जाएंगें ।

जब महाबल ने मलया से प्रस्थान के लिए अनुमति मांगी, तब एक बार तो मलया के मन में आया कि वह भी पति के साथ चलेगी ! परंतु फिर उसने सोचा-``बार-बार पति के साथ जाने का आग्रह रखना ठीक नहीं है, अतः

अनिच्छा होते हुए भी मलया ने महाबल को जाने के लिए मूक सम्मति दे दी ।''
महाबल उस करूण स्वर की दिशा में आगे बढ़ा । हाथ में नंगी तलवार लिए वह एक निर्भीक सेनानी की भांति आगे बढ़ रहा था । ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, रुदन का करुण स्वर और अधिक तीव्र होता गया । उसके चले जाने के बाद मलयासुन्दरी कुछ समय तो एक वृक्ष के नीचे बैठी रही, परन्तु अत्यंत थकी होने के कारण कुछ समय बाद भूमि पर ही लेट गई और उसे निद्रा आ गई ।

निद्रा पूर्ण होने पर वह जगी । उसने चारों ओर देखा । परन्तु कहीं भी महाबल दिखाई नहीं दिया । रात्रि का अन्तिम प्रहर आधा बीत चुका था । चारों ओर शून्य वातावरण था । पुरुष वेष में रही मलयासुन्दरी, महाबल की दिशा में दूर-सुदूर तक देखती रही, परन्तु कहीं भी उसे कोई पुरुषाकृति दिखाई नहीं दी ।

दो प्रहर तक इन्तजारी करने पर भी जब महाबलकुमार नहीं आया तो वह घबरा गई । उसके चेहरे की प्रसन्नता लुप्त हो गई और भय के कारण उसका चेहरा उदास हो गया । फिर सोचने लगी ``शायद वह करुण-रुदन किसी दुष्ट नारी अथवा राक्षसी का न हो । उसने मेरे प्रियतम को विपत्ति में तो नहीं डाला ?'' इस प्रकार अनेक संकल्प-विकल्पों के जाल में फंसी हुई मलयासुन्दरी अत्यन्त चिंतातुर बन गई ।

अन्त में उसने सोचा ``शायद वे अपनी मां को मिलने की उत्सुकता को रोक न पाये हो और सीधे नगर में चले गये हो, अतः मुझे नगर की ओर जाना ही हितकर है ।'' ऐसा सोचकर मलयासुन्दरी नगर के द्वार की ओर चल पड़ी ।

इधर जिस दिन से महाबलकुमार का अपहरण हुआ था, उसी दिन से महाराजा सुरपाल और महारानी पद्मावती अत्यन्त चिंतातुरं बने हुए थे । महारानी ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि पांच दिन में हार नहीं मिलेगा तो वह अपने प्राण त्याग देगी । आज उस प्रतिज्ञा के पांच दिन पूरे हो रहे थे, अतः महारानी के प्राण-त्याग की प्रतिज्ञा से महाराजा भी चिन्तातुर थे । महाराजा ने गत दो दिनों से समस्त सेनानायकों को आदेश दे दिया था, `वे चारों दिशाओं में जाकर महाबल की जांच करें', महाबल के समाचार नहीं मिलने से महारानी और भी अधिक चिन्तातुर थी ।

राजाज्ञा को स्वीकार कर सभी राज-सैनिक तथा सेना नायक महाबल की शोध में निकल पड़े ।

इधर मलयासुन्दरी पुरुष वेष में नगर की ओर जा रही थी । उसे एक

अज्ञात पुरुष के रूप में देखकर तथा उसके कानों के कुण्डल, महाबल के कुण्डल जैसे होने से सैनिकों के मन में सन्देह पैदा हुआ कि हो न हो, इसी ने महाबल को मारकर उसके कुण्डल पहन लिये है ।

सैनिकों ने पूछा - ``तुम कौन हो ?''

प्रश्न सुनकर मलयासुन्दरी मौन रही और घबरा कर इधर-उधर देखने लगी । मलयासुन्दरी के मौन ने सैनिकों के सन्देह में बढोतरी की और वे उसे बन्दी बना कर राजमहल की ओर ले गये ।

कर्म की गति कितनी विचित्र है । जो पुत्र-वधु बन चुकी थी, जिसके स्वयंवर के लिये दूर-सुदूर से राजकुमार अत्यन्त लालायित होकर आए थे, आज वही राजकुमारी एक कैदी की भांति अपने ही श्वसुर के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है ।

महाराजा ने उसके चेहरे की ओर देखा और फिर कुण्डलों की ओर ।

राजा ने कहा-``अरे ! ये कुण्डल तो महाबलकुमार के है, जरूर यह कोई चोर है अन्यथा इसके पास ये कुण्डल कहां से आए ?''

राजा ने पूछा, ``तुम कौन हो, ये कुण्डल तुम्हारे पास कहां से आए ?''

निर्दोष मलयासुन्दरी के ऊपर पुनः एक आपत्ति आ खड़ी हुई । उसने सोचा ``अभी मैं पुरुष वेष में हूँ, अतः यदि सब कुछ सत्य कह दूंगी, तो भी उसे स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं होगा, अतः उसने मौन रहना ही मुनासिब समझा ।''

राजा ने पुनः वही प्रश्न किया ।

मलयासुन्दरी ने अपना मौन तोड़ा और बोली - ``मैं महाबल का मित्र हूँ और उसी ने मुझे ये कुण्डल दिये हैं ।''

अज्ञात पुरुष की बात सुनकर राजा ने पुनः प्रश्न किया - ``वह कुमार कहां हैं ?''

``यहीं कहीं आस पास होगा ।'' मलया ने जवाब दिया ।

राजा ने कहा, ``यदि कुमार यहां आस-पास होता तो वह यहां आए बिना नहीं रहता, अतः तुम झूठ बोलते हो ।''

इतना कह कर राजा सोचने लगा, ``यह कोई दुष्ट पुरुष लगता है । अलंब पर्वत की गुफा में रहने वाले खूंखार डाकू लोभसार को, जिसे कल ही फांसी दी गई थी, लगता है यह उस डाकू का कोई संबंधी है, इसीने महाबल-कुमार को मरवा कर उसके कुण्डल वस्त्रादि प्राप्त कर लिये हैं ।'' ऐसा सोचकर

महाराजा ने तत्काल आदेश दिया, इस व्यक्ति को शीघ्र ही मृत्युदण्ड दिया जाय ।'

राजा के इस आदेश को सुनकर मलयासुन्दरी अत्यन्त भयभीत हो गई ।

वह सोचने लगी, ``**अहो ! यह कैसी भाग्य की विडम्बना है । कहां मुझे वधु के रूप में राजमहल के प्रांगण में प्रवेश करना था ! और कहां यहां मृत्यु की सजा हो रही हैं ? क्या एक नव-वधु का श्वसुर गृह में इस प्रकार ही आदर होता है ? नहीं, अवश्य मेरे किसी अशुभ कर्म का तीव्र उदय है, जिसके परिणाम स्वरूप मेरे ऊपर मरणांत कष्ट आ रहे है । एक बार पिता ने मुझे मृत्यु के मुख में धकेली और अब श्वसुर की ओर से मुझे मृत्यु की भेंट मिल रही है । परन्तु इसमें महाराजा कोई दोष नहीं है, दोष मेरे कर्मों का है, महाराजा तो निमित्त मात्र हैं ।''**

मलया अपने आपको समझाने लगी-``**हे आत्मन् ! जन्म के बाद मृत्यु निश्चित है । अतः मृत्यु के आगमन पर शोक करना व्यर्थ है । जीवन का सत्कार किया है तो मृत्यु का भी सत्कार करना होगा ।''**

इस तत्वज्ञान के चिंतन ने मलयासुन्दरी को आश्वस्त कर दी ! वह निर्भीक बनकर महाराजा के सामने खड़ी रही ।

महामन्त्री ने भी राजा की आज्ञा सुनी । उसने मलयासुन्दरी की ओर देखा और उसके निर्दोष चेहरे के भावों को पढ़ लिया ।

मन्त्री ने राजा को हाथ जोड़ कर कहा-``स्वामीनाथ ! आपकी आज्ञा में कुछ जल्दबाजी हो रही है । इस व्यक्ति के चेहरे को देखने से मुझे लगता है कि यह दोषी नहीं है । निर्दोषिता की झलक इसकी आंखों में स्पष्ट दिखाई दे रही है अतः इसको तुरन्त मृत्यु-दण्ड देना उचित नहीं है ।''

राजा ने कहा-``इसके पास से प्राप्त सामग्री से तो यहं दोषी सिद्ध हो रहा है ।''

``यदि ऐसा ही है, तो दिव्य करके इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये ।'' मन्त्री ने कहा ।

``परन्तु कौन-सा दिव्य दिया जाएं ?'' राजा ने कहा ।

मन्त्री ने कहा-``नागदेव का दिव्य देना सबसे अच्छा हैं, अतः उसे वह दिव्य देना उचित है ।''

राजा ने कहा, `जैसा ठीक समझो, करो ।'

卐 卐 卐 卐 卐

पृथ्वीस्थानपुर के महाराजा सुरपाल अपने आराम खण्ड में बैठे हुए थे। मन्त्री को दिव्य देने की तैयारी कराने का आदेश दे दिया गया था।

तभी अचानक एक दासी ने महाराजा के खण्ड में प्रवेश किया। दासी हाथ जोड़कर विनम्र भाव से एक ओर खड़ी हो गई।

राजा ने कहा-``क्या बात है ?''

दासी बोली, ``महारानी का संदेश लेकर आई हूँ।''

राजा ने कहा-``क्या संदेश है महारानी का ?''

दासी ने कहा-, ``स्वामीनाथ ! महारानी ने कहलाया है आज मेरी प्रतिज्ञा के पांच दिन पूरे हो रहे हैं और अभी तक न हार का पता है और न महाबल का। एक हार के कारण मैंने अपने इकलौते बेटे को खो दिया, अतः अब मैं जीवन धारण करने में असमर्थ हूँ। अलंब पर्वत के ऊपर से छलांग लगा कर अपने जीवन का अन्त करना चाहती हूँ। अतः **आज तक हुए मेरे अपराधों को आप क्षमा करें और इस कार्य के लिए अनुमति प्रदान करें।''**

महारानी के मनोगत भावों को जानकर राजा ने कहा-``हे दासी ! महारानी से कहो कि मृत्यु के लिए इतनी शीघ्रता न करे। कुमार की शोध के लिए चारों ओर राजसैनिक गये हुए हैं, वे आज शाम तक कुमार का कोई समाचार नहीं लाए, तो कल मैं भी मृत्यु की शरण में चला जाऊंगा। आज ही एक व्यक्ति मिला है, जिसके पास से महाबल के कुण्डल मिले हैं। जाओ, महारानी पद्मावती को ये कुण्डल-वस्त्र आदि सौंप देना।''

इतना कहकर महाराजा ने मलयासुन्दरी के पास से प्राप्त कुण्डल, वस्त्र आदि दासी को सौंप दिये और अन्त में कहा-``महारानी को ढाढ़स बंधाना, आज ये कुण्डल मिले हैं, तो कुमार और लक्ष्मीपुंज हार भी अवश्य मिल जाएगा, अतः धैर्य रखें।'' इतना कहकर महाराजा मौन हो गये।

महाराजा के संदेश को लेकर दासी महारानी के पास जा पहुंची और महाराजा का संदेश कह सुनाया। महाबल के कुण्डल, वस्त्र को देखकर महारानी के आनन्द का पार नहीं रहा।

उसने पूछा-``ये कुण्डल, वस्त्र कहां से मिले हैं ?''

दासी ने कहा,-`मैंने राजकर्मचारियों से सुना है कि आज ही एक अज्ञात व्यक्ति पकड़ा गया है, जिसके पास से ये कुण्डल और वस्त्र मिले हैं।'' महाराजा ने तो उसको फांसी पर चढ़ाने का आदेश दे दिया था, किन्तु मन्त्री

के कहने से उसे दिव्य दिया जायेगा ।

महारानी बोली-``तब तो मैं भी जाऊंगी, उस दिव्य को देखने के लिए ।''

इधर पूरे नगर में मलयासुन्दरी को दिव्य देने के समाचार फैल गए ।

दिव्य का स्थल नियत हो चुका था-धनंजय यक्ष का मन्दिर । चारों ओर प्रजाजन उस यक्ष मन्दिर की ओर आगे बढ़ते जा रहे थे । मन्त्री की आज्ञा से एक गारुडिक अलंब पर्वत पर गया और एक काले मोटे नाग को पकड़ कर ले आया । उस नाग को एक मटके में रख दिया गया ।

महाराजा और मलयासुन्दरी एक ही रथ में बैठकर तीव्र गति से यक्ष मन्दिर की ओर चल पड़े और ठीक मध्याह्न के समय यक्ष मन्दिर में जा पहुंचे । राजा ने सद्भावपूर्वक यक्ष देव को नमस्कार किया । सभी प्रजाजन शांत चित्त से अपने-अपने स्थान पर बैठ गये ।

पुरुष वेष में रही मलयासुन्दरी ने अपना स्थान ग्रहण किया । जिस-जिस व्यक्ति ने मलयासुन्दरी के चेहरे की ओर देखा, वह दंग रह गया । अहो ! कामदेव की आकृति के समान अत्यन्त तेजस्वी इस कुमार को दिव्य दिया जा रहा है । यह व्यक्ति आकृति से अत्यन्त ही निर्दोष दिखाई दे रहा है । बेचारा ! कैसे इस जाल में फंस गया ।

तभी मन्त्री ने खडे होकर घोषणा की-``प्रिय प्रजाजनों ! आज आपके सामने इस व्यक्ति को दिव्य दिया जा रहा है, यदि यह व्यक्ति निर्दोष होगा तो इस घड़े में हाथ डालने पर भी सर्प उसे दंश नहीं देगा और यदि दोषी होगा तो सर्प दंश से तत्काल मृत्यु हो जायेगी ।''

अपनी घोषणा समाप्त कर महामन्त्री ने मलयासुन्दरी को उस घड़े में हाथ डालने का आदेश दिया ।

आदेश मिलते ही पुरुष वेषधारी मलयासुन्दरी खड़ी हो गई । उसने मन ही मन नवकार महामन्त्र का स्मरण किया और महाबल द्वारा प्रदत्त श्लोक को याद कर घड़े की ओर आगे बढ़ी । उसने घड़े का ढक्कण हटा दिया और उसमें अपना हाथ डाला । घड़े में से एक काला नाग बाहर निकला । उसने स्नेह भरी दृष्टि से मलया की ओर देखा । तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गुंज उठा । **``निर्दोष ! निर्दोष !! की आवाज चारों ओर से आने लगी ।''**

सभी लोगों ने एक आश्चर्यजनक घटना देखी, उस सर्प ने अपने मुंह में से एक दिव्य हार निकाला और मलयासुन्दरी के गले में डाल दिया । राजा ने

हार पहिचान लिया और कहा-``अरे ! यह तो वही लक्ष्मीपुंज हार है । लोगों के आश्चर्य का पार न रहा। तभी एक और आश्चर्यजनक घटना घटी । वह सर्प मलयासुन्दरी के मुंह की ओर आगे बढ़ा । उसने अपने थूंक से मलयासुन्दरी के मस्तक पर रहा तिलक मिटा दिया, जिससे मलयासुन्दरी जो पहले पुरुष के रुप में थी, पुनः स्त्री के रुप में आ गई ।

यह सब दृश्य देख राजा और प्रजाजन विचार करने लगे ``यह सर्प अवश्य कोई देव होगा, अन्यथा एक सर्प के मुंह में हार कहां से आए ?'' इस प्रकार का आश्चर्य देख सभी प्रजाजन स्तब्ध हो गये, सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

मलयासुन्दरी चिन्तातुर हो गई । वह सोचने लगी, `अभी तक प्रियतम आये नहीं ।' उन्होंने कहा था, ``मेरे थूंक के बिना तुम्हारे रुप का परिवर्तन नहीं होगा, अतः क्या मेरे प्रियतम सर्प के रुप में परिवर्तित हो गये हैं ? और यह लक्ष्मीपुंज हार जो मेरे स्वामी के पास था, इस सर्प के मुंह में से कैसे निकला ? क्या अब मुझे प्रियतम की प्राप्ति नहीं होगी ?'' इस प्रकार के विचारों में लीन मलयासुन्दरी मन ही मन बहुत दुःखी हो गई ।

यह अजीब दृश्य देखकर राजा भी भयभीत हो गया । ``अहो ! मैंने यह कैसा अकार्य किया ? यह सर्प शायद देव होगा, इसे पकड़वर कर मैंने इसे विशेष कष्ट दिया है, अतः कोई भयंकर अनर्थ हो सकता है । भावी अनर्थ के चिन्तन से राजा सहम उठा, उसने कहा-``यह सामान्य सर्प नहीं लगता है, इसे प्रसन्न करना चाहिये ।''

राजाज्ञा से नागराज के समक्ष तत्काल धूप-दीप आदि प्रस्तुत किये गये और ताजे दूध से भरा कटोरा रखा गया, जिसे नागराज ने बड़े ही प्रेम के साथ पी लिया । अब राजा ने पुनः आज्ञा दी, `इस सर्प को जिस स्थान से लाए हो, उसी स्थान पर वापिस सुरक्षित छोड़ आओ ।'

राजाज्ञा सुनकर कापालिक उस सर्प को पुनः अपनी झोली में रखकर अलंब पर्वत की गुफा में छोड़ने चला गया ।

मलयासुन्दरी को पुनः स्त्री वेष में देखकर महाराजा ने कहा-, ``हे कुमारी ! दिव्य परीक्षा से तू निर्दोष सिद्ध हो चुकी है, परन्तु सत्य बताओ, तुम कौन हो ?''

मलया ने कहा-``राजन् ! मैं चन्द्रावती के महाराज वीरधवल की पुत्री मलयासुन्दरी हूँ ।'' यह सुनकर राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं आया ।''

उसने कहा-``यह कैसे हो सकता है ? कहां चन्द्रावती नगरी और कहां पृथ्वीस्थानपुर ?'' परन्तु बाद में विचार किया कि यदि यह राजपुत्री होगी तो जरुर राजा वीरधवल के सैनिक उसकी खोज में आएंगें । अतः अब इसके साथ ज्यादा चर्चा करना उचित नहीं है । राजा उसके जवाब को सुनकर मौन रहा ।

प्रजा के आश्चर्य का पार न रहा । राजा और रानी भी मलयासुन्दरी को साथ लेकर राजमहल में आ पहुंचे । प्रजाजनों ने भी विदाई ले ली ।

१२. सुवर्ण-पुरुष

राजा ने कहा-``महारानी ! अब हार तो मिल गया है, अतः अब मृत्यु का विचार छोड़ दो ।''

रानी ने कहा,-``हे स्वामीनाथ ! हार की प्राप्ति तो बहुमूल्य रत्न को खोकर कांच के टुकड़े पाने जैसी हुई है । मेरी धृष्टता को धिक्कार हो, मैंने एक नश्वर हार के लिये अपने एकाकी पुत्र को खो दिया । अब मैं उसके बिना जीवित रहने में असमर्थ हूँ । अतः अब आप मुझे अलंब पर्वत पर से आत्मघात करने की आज्ञा दीजिये ।''

राजा ने कहा-,**``हे प्रिये ! इतनी अधीर मत बन । तुझे पता है, धीरज का फल मीठा होता है । तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार लक्ष्मीपुंज हार मिल चुका है, संभव है, कुमार का भी पता लग जाएगा । कल तक कुमार का पता नहीं चला तो मैं भी तेरे ही मार्ग का अनुसरण करुंगा ।''**

राजा के इतना कहने पर निराश बनी महारानी अपने खण्ड की ओर चली गई ।

पानी के प्रवाह की तरह समय तीव्र गति से बह रहा था । ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा था, महाराजा के हृदय की वेदना बढ़ती जा रही थी । वे कभी दरवाजे की ओर देखते, तो कभी खिड़की की ओर । वे इस प्रतीक्षा में थे कि महाबल आ जाय और महारानी को मौत के मुख से बचा लिया जाय । धीरे-धीरे मध्याह्न बीत गया और सूर्य अस्ताचल की ओर प्रयाण करने लगा । सूर्य देव के इस प्रयाण में महाराजा अपने जीवन की चिर निद्रा के दर्शन कर रहे थे । क्योंकि महाबल के न आने पर महाराजा और महारानी दोनों का जीवन दीप बुझने वाला था ।

आज महाराजा को समय की द्रुत गति का पता चल रहा था । उनकी इच्छा थी कि समय धीरे-धीरे व्यतीत हो, परन्तु इस काल के ऊपर कौन

प्रतिबन्ध लगा सकता है ? लम्बी इंतजारी के बाद भी महाबलकुमार का कोई संकेत नहीं मिला। महाराजा और महारानी ने अपनी दर्द भरी रात व्यतीत की।

प्रातःकाल हुआ। पूर्व दिशा में सूर्यदेव अपनी असंख्य किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने लगे। वे अपने उदय से विश्व के समस्त प्राणियों को जागृत करने लगे।

विराट् विश्व में सूर्य के समान उदार-चित्त और कौन हो सकता है ? वह अपने उदय के साथ ही सारी सृष्टि में चैतन्यता का संचार कर देता है। वह दीर्घ-निद्राधीन व्यक्तियों के प्रमाद को दूर करता है। उसके उदय होने पर कोयल का कुंजन प्रारम्भ हो जाता है और अन्धकार का साम्राज्य लुप्त हो जाता है।

पृथ्वीस्थानपुर के प्रजाजन प्रतिदिन सूर्योदय के समय, जहां सदैव प्रसन्न दिखाई देते थे, आज वे उदास प्रतीत हो रहे थे। उन्हें डर था कि कहीं उनके प्रजा वत्सल महाराजाधिराज, आज महारानी सहित अपना जीवन दीप बुझा न ले। अतः उन्हें सूर्य का उदय श्राप रुप लग रहा था। अच्छा होता यदि आज का सूरज उगता ही नहीं।

संसार की संरचना बहुत ही विचित्र है। इस सम्पूर्ण विश्व के ऊपर कर्मसत्ता का एक छत्री साम्राज्य है। मनुष्य अपनी बुद्धि से जहां कुछ भिन्न प्रकार की कल्पना संजोता है, वहां कर्म-सत्ता को कुछ और ही मंजूर होता है।

महाराजा घोषणा कर चुके थे कि वे आज महारानी के साथ अलंब पर्वत पर चढ़ कर अपने प्राणों का अन्त कर देंगे, अतः सभी प्रजाजन अलंब पर्वत की ओर आगे बढने लगे। साथ में महाराजा और महारानी भी थे। सभी के चेहरों पर उदासीनता छाई हुई थी। न किसी के मुख पर हास्य था और न ही प्रसन्नता। मन्द-मन्द गति से सभी आगे बढ़ रहे थे।

धैर्य की इस पद यात्रा के बाद महाराजा और महारानी अपने प्रिय प्रजाजनों के साथ अलम्ब पर्वत के संन्निकट पहुंचे।

महाराजा एक ऊंचे पत्थर पर चढ़ कर अपना अन्तिम सन्देश सुनाने लगे, **''हे प्रजाजनों ! आज मैं महारानी के साथ अपने जीवन को समाप्त करुंगा, महारानी दृढ़-प्रतिज्ञ है, अतः आप शोक मत करना। मैंने अनजाने में किसी व्यक्ति का दिल दुःखाया हो तो आप सभी से क्षमायाचना करता हूँ।''** इतना कहते-कहते महाराजा का हृदय भर आया। सभी लोगों की आंखों में से गंगा और यमुना बहने लगी। वातावरण अत्यन्त विषादयुक्त हो गया। कई

लोगों ने तो जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया ।

महाराजा ने अन्त में कहा, ``यह पर्वत अत्यन्त ही विकट है, अतः इस पर्वत पर हम दोनों चढ़ेंगे, आपको चढ़ने की आवश्यकता नहीं है ।''

इतना कहकर महाराजा और महारानी ने पर्वतारोहण आरम्भ किया । महाराजा और महारानी धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और प्रजाजन जोरों से विलाप कर रहे थे ।

अचानक ही एक युवक तेजी से दौड़कर आता हुआ दिखाई दिया । तीव्र दौड़ के कारण वह बुरी तरह हांफ रहा था । वह जोरों से चिल्ला रहा था, ``रुको ! रुको ! महा...बल...मिल गया है, महाबल जीवित है ।'' जिसने भी यह आवाज सुनी, वह खुशी से नाच उठा । वह युवक तीव्र रफ्तार से भीड़ को चीर कर आगे बढ़ रहा था । भीड़ ने उसे मार्ग दिया ।

उसने आते ही कहा-``हे पृथ्वीनाथ ! लौट आओ...वापस लौट आओ...! महाबलकुमार मिल गया है ।''

अलम्ब पर्वत पर महाराजा अभी थोड़ी दूर तक ही चढ़ पाये थे । उनके कान में यह ध्वनि सुनाई दी ।

पहले तो उन्होंने सोचा-``क्या हमारे जीवन को बचाने के लिए गप्प तो नहीं हांक रहा है ?'' लेकिन दूसरे ही क्षण विचार किया, ``उसे असत्य बोलने से क्या लाभ हो सकता है ? फिर भी यदि वह झूठ साबित हुआ तो मरने का प्रयत्न तो दूसरी बार भी हो सकेगा ।''

महाराजा ने महारानी की ओर ईशारा किया और कहा-``देवी ! चलो नीचे ।''

महारानी ने पूछा-``क्यों स्वामीनाथ ?''

महाराजा ने खुश होकर कहा-``कुमार मिल गया है ।''

रानी ने कहा-``कहां है कुमार ? जल्दी बताओ, उसे देखकर ही मुझे शान्ति मिलेगी ।''

महाराजा ने कहा-``तो चलो नीचे ।''

महाराजा तथा महारानी तेजी से नीचे उतरने लगे ।''

थोड़ी ही देर में महाराजा और महारानी नीचे आ गये । पृथ्वी पर आते ही महाराजा ने प्रश्न किया-``कहां है मेरा महाबलकुमार ?''

तेज दौड़ने से वह युवक हांफ रहा था, उसने रुकते-रुकते कहा, ``स्वामीनाथ ! आपके अन्तिम दर्शन करने के लिये मैं भी अलम्ब पर्वत की ओर

आ रहा था । मुझे अचानक ही धनंजय यक्ष के दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई और मैंने अपना रास्ता बदल लिया । मैंने यक्ष मन्दिर में धनंजय यक्ष के दर्शन किये । फिर ज्योंहि मैं इधर मुड़ने लगा, मेरी नजर उस वट वृक्ष पर पड़ी, जहां दो दिन पहले आपने लोभसार चोर को पकड़वाकर फांसी दिलाई थी । इसके साथ ही मेरी नजर पास की एक डाली पर गई, वहां पर कोई मनुष्य उल्टा लटका हुआ था । उसका मुंह नीचे था और पैर ऊपर से बंधे हुए थे ।

मैं उसके निकट गया । मैने देखा कि वह मनुष्य जीवित था और बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे श्वास ले रहा था । ज्योंहि मैंने उसके मुख को देखा, मैं अवाक् रह गया, क्योंकि वह व्यक्ति स्वयं महाबलकुमार ही थे ।

उन्होंने मुझे अपने पैर के बंधन खोलने के लिए ईशारा किया । परन्तु मैंने कहा-``आपके माता-पिता आपके विरह को सहन न कर सकने के कारण अलम्ब पर्वत से नीचे गिरने के लिए प्रयाण कर चुके हैं, अतः पहले मैं उन्हें बचा लूं, फिर आपके बंधन खोलूंगा ।''

उन्होंनें मेरी बात में सहमति प्रकट की और मैं दौड़ता हुआ आपको समाचार देने आया हूँ । आप जल्दी करे, कुमार हांफ रहा है ।

समाचार सुनते ही महाराजा का हृदय हर्ष और शोक से भर आया । पुत्र की प्राप्ति का उन्हें अपार हर्ष था, किन्तु पुत्र को संकट-ग्रस्त जान कर उन्हें शोक भी हो रहा था ।

महाराजा वृद्ध थे, परन्तु वृद्धावस्था होते हुये भी वे जवानों की-सी तेजी के साथ दौड़ रहे थे । आगे-आगे महाराजा और पीछे पीछे प्रजाजन । महाराजा की दौड़ ने तो उस युवक को भी पछाड़ दिया, परन्तु वह ज्यादा पीछे नहीं रहा । थोड़ी ही देर में महाराजा आदि उस वट वृक्ष के निकट पहुंच गये । चारों ओर धूल की गुलाल उड़ रही थी । जो प्रजा अत्यन्त शोक मग्न थी, वह अब फूली नहीं समा रही थी ।

मलयासुन्दरी भी महाराजा के भृगुपात को देखने आई थी, अभी तक उसका हृदय भी अत्यन्त शोकातुर था । महाबल के समाचार से उसके हृदय में भी आनन्द की उर्मिया उछल पड़ी थीं, वह भी तेजी से दौड़ कर वट वृक्ष के निकट आ गई ।

महाबलकुमार भूख और प्यास से तो पीड़ित था ही, उल्टा लटका हुआ होने से उसे श्वास लेने में भी तकलीफ हो रही थी । महाराजा ने कुशल

व्यक्तियों को आदेश दिया और उन्होंने तत्काल महाबलकुमार को बंधन मुक्त किया। उसे उठा कर वृक्ष की छाया में लाया गया, जहां उसे सुला दिया गया। उसका श्वास जोरों से चल रहा था और उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। थोड़ी ही देर में जब वह होश में आया तो उसने अपनी आंखें खोली।

महारानी, जो पुत्र की वेदना को सहन नहीं कर पा रही थीं, दुःख से व्याकुल थी। पुत्र को होश में आता देखकर उसकी आंखों में से प्रेम के अश्रू उमड़ पड़े। महाराजा भी अपने पुत्र को स्वस्थ देखकर बहुत प्रसन्न हुये।

महाबल ने महाराजा और महारानी की ओर स्नेह भरी निगाह से देखा। वह बोलना चाहता था, किन्तु बोल नहीं पा रहा था। उसने पानी के लिए ईशारा किया। तत्काल राजसेवक दौड़ पड़े और पास ही में बह रही गोला नदी के शीतल जल को ले आये।

महाबल ने जल पीया, उसे कुछ स्फुर्ति का अनुभव हुआ। फिर महारानी ने करुण स्वर से कहा-``पुत्र ! मेरे कारण तुझे इस संकट में फंसना पड़ा। हार के गुम हो जाने के बाद, जब से तेरा अपहरण हुआ है, तब से मेरी निद्रा गायब हो गई है।

राजा ने भी कहा-``हे पुत्र ! तुम्हारे अपहरण के पश्चात् तुम्हारे साथ क्या बीता ? इस वट वृक्ष के नीचे तुम्हें किसने लटकाया ?'' इत्यादि सभी घटनाएं हमें विस्तार सहित बताओ।

अपने माता-पिता की तीव्र जिज्ञासा को देखकर कुमार ने कहा-``इन पांच छह दिनों में बहुत ही आश्चर्यजनक घटनाएं घटी हैं, सभी प्रजाजन एक तरफ आकर बैठ जायें, तो मैं अपनी आपबीती आपको सुनाऊं।

प्रजाजन तो महाबल की चित्र-विचित्र घटानाओं को सुनने के लिए पहिले से ही आतुर थे, अतः सभी प्रजाजन चारों ओर बैठ गये। कुमार ने अपने अपहरण से लेकर अन्त तक की सभी बातें विस्तार से कहनी चालू की। कुमार की विस्मयजनक बातों को सुनकर प्रजाजन, कभी हंस पड़ते तो कभी भयभीत हो जाते।

पृथ्वीस्थानपुर के उद्यान तक के आगमन की बात कुमार ने पूरी की, तब उसने अपनी प्रिया मलया की ओर ईशारा किया। उसने उठ कर महारानी और महाराजा के चरणों में नमस्कार किया। **'यह कन्या महाबल की पत्नी और हमारी पुत्र-वधु है।'** यह जानकर राजा-रानी के आश्चर्य का पार नहीं रहा।

महाराजा और महारानी बोल उठे-``हे कुमारी ! तूने यह बात हमें पहले क्यों नहीं बताई ?'' हमने तुम्हारे साथ कैसा दुर्व्यवहार किया और तुझे कितने कष्ट दिए ?

मलया ने कहा, ``इस कष्ट में आपका दोष नहीं है, परंतु उस समय सत्य प्रकट करने पर भी उसका स्वीकार होना अत्यन्त कठिन था, अतः मैंने जानबूझ कर ही सत्य को छिपाये रखा था।''

कुमार ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा, ``पिताजी ! जब हम उद्यान के बाहर आए, तब मुझे पूर्व दिशा में एक स्त्री का करुण स्वर सुनाई दिया। उस करुण स्वर ने मेरे हृदय-पट्ट को बिंध दिया, मैं सहायता करने के लिए उस ओर चल पड़ा। मैं आगे बढ़ता गया। मैंने देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक स्त्री करुण स्वर से रुदन कर रही है। तभी एक योगी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। उसने मुझे ईशारा किया और मैं उसके पास गया। आस-पास के वातावरण को देखते ही मैं समझ गया कि यह कोई साधक पुरुष है और कोई साधना कर रहा है। दीपक के मंद प्रकाश में योगी ने मेरे तेजस्वी चेहरे को देख लिया।''

वह योगी, सुवर्ण पुरुष की साधना कर रहा था। साधना के लिये हर प्रकार की सामग्री उसके पास उपलब्ध थी, किन्तु उत्तर साधक की कमी थी।

उसने मुझे नम्रता से कहा, `हे कुमार ! मैं सुवर्ण पुरुष सिद्ध करना चाहता हूँ, साधना के लिए अन्य सामग्री मेरे पास है किन्तु उत्तर-साधक की कमी है, अतः हे पुण्यात्मा ! मेरे उत्तर-साधक बन कर आप मेरी सहायता करें। मैं आपके इस उपकार को कभी नहीं भूलूंगा।''

योगी की बात सुनकर मुझे दया आ गई। मैंने उसकी बात स्वीकार की। हाथ में नंगी तलवार लेकर मैं उत्तर साधक के रुप में खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद योगी ने मुझे आदेश दिया, ``हे कुमार ! उस वृक्ष के ऊपर जो मनुष्य का शव लटक रहा है, उस शव को मेरे पास ले आओ।'' मैंने उसकी आज्ञा स्वीकार की और शव लाने के लिए वृक्ष की ओर आगे बढ़ा। वहीं पर वह स्त्री करुण स्वर से रुदन कर रही थी।

मैंने पूछा-``हे देवी ! तू कौन है ? इस भयंकर वन में इस प्रकार क्रन्दन क्यों कर रही है ?''

रुदन करती हुई उस स्त्री ने कहा,-``मैं अत्यन्त ही मंदभागिनी हूं, अपनी बात क्या बताऊं ? इस वृक्ष के ऊपर जो पुरुष लटक रहा है, वह

अलम्ब पर्वत की गुफाओं में रहने वाला सुप्रसिद्ध डाकू लोभसार है । आज ही यहां के महाराजा के गुप्तचरों ने इसे अपने माया जाल से पकड़ लिया और फांसी के फंदे पर चढ़ा दिया है । मैं इसकी प्रिया स्त्री हूँ, कल ही हम दोनों का संगम हुआ था और आज ही इन्हें फांसी दे दी गई । पति की इस अकाल मृत्यु से मेरा हृदय कांप रहा है । मेरी अन्तिम इच्छा है, **``मैं अपने पति का अन्तिम चुम्बन लूं ।''**

मैंने सोचा-``मोह की यह कैसी बिडम्बना है, मृत देह के प्रति भी कैसी ममता है कि एक पत्नी अपने पति का चुम्बन लेना चाहती है ?''

मुझे उस पर दया आ गई । मैंने उस स्त्री को अपने कंधों पर चढ़ा लिया और वह ज्योंहि उस मृतक का चुम्बन लेने लगी, उस शव ने उसके नाक को अपने मुंह में पकड़ लिया । वह जोरों से चिल्लाई । उसने अपने शरीर को पीछे खींचा और उस खिंचातानी में उस स्त्री के नाक का अग्र भाग कट गया ।

उस स्त्री के नाक के घाव में से रक्त बहने लगा । मैंने वहां पर उगी हुई वनस्पति पीसकर उसके घाव पर लगा दी । जिससे रक्त का बहना बन्द हो गया ।

प्रयाण के पूर्व उस स्त्री ने पूछा-``आप कौन हैं ?'' मैंने उसे अपना सत्य परिचय बतला दिया ।

उसने कहा-``स्वस्थ होने पर मैं अवश्य आपसे मिलने आऊंगी और पर्वत की गुफाओं में छुपाया हुआ धन दिखलाऊंगी ।'' इतना कहकर वह चली गई । मैं वृक्ष के ऊपर चढ़ा और उस शव को उठा कर नीचे ले आया । परन्तु ज्योंहि मैंने उसे धरती पर रखा, त्योंहि वह शव पुनः वृक्ष पर लटक गया ।

यह देखकर मैंने सोचा, `इस योगी की साधना में किसी देवी का विघ्न लगता है ।' मैं पुनः वृक्ष के ऊपर चढ़ गया । उस शव को चोटी से पकड़ा और उसे अपने कंधों पर डाल कर पुनः उस योगी के पास ले आया ।

योगी ने उस शव को स्नान कराया और उस पर चन्दन का लेप किया । तत्पश्चात् उस शव को एक गोलाकार मण्डप में रख दिया । मण्डप के एक ओर एक अग्नि कुण्ड जल रहा था । हाथ में नंगी तलवार लिये मैं उत्तर साधक के रुप में खड़ा रहा । योगी ने अपनी आंखें मूँद ली और वह ध्यानस्थ हो गया । उसने अपनी मंत्र साधना प्रारम्भ कर दी । वह रात्रि के अन्त समय तक जाप में मग्न रहा । दो प्रहर की साधना के बाद भी जब वह मृतक अग्नि कुण्ड में नहीं गिरा तो योगी को चिंता सताने लगी । तभी वह मृतक अट्टहास करते हुए

आकाश में उड़ गया और उसी वृक्ष की डाल पर लटक गया।

योगी की साधना निष्फल गई। निराश होकर योगी ने मुझे कहा-``हे कुमार ! पता नहीं, किस भूल के कारण मेरी यह साधना निष्फल गई ?'' आप एक रात्रि के लिए ठहर जाए। आपके बिना मेरी यह साधना सफल नहीं होगी।

मैंने कहा-``योगीराज ! बात ठीक है, किन्तु मेरे बिना मेरे माता-पिता मृत्यु को स्वीकार लेंगे, अतः मैं अधिक नहीं ठहर सकता।

परन्तु योगी ने बड़ी दीनता से कहा, 'तुम्हारे बिना तुम्हारे माता-पिता मृत्यु को प्राप्त नहीं करेंगे अतः एक रात्रि के लिए और ठहर जायें'। योगी की विनती ने मेरे हृदय को द्रवित कर दिया और मैंने उसकी बात स्वीकार ली।'

पूर्व दिशा में सूर्य का उदय हुआ। चारों ओर पक्षियों का मधुर कलरव सुनाई देने लगा। योगीराज के साथ मैंने भी फलाहार कर अपनी क्षुधा शांत की।

मध्याह्न के समय योगी ने कहा-``हे प्रिय कुमार ! इस कुटिया में रहते हुए यहां तुम्हें कोई देख लेगा तो वह राजा को शिकायत करेगा, मेरा जीवन खतरे में गिर जायेगा। साधना आरम्भ करने में अभी बहुत समय है, अतः यदि तुम आज्ञा दो तो मैं तुम्हें अन्य प्राणी के रुप में बदल दूं, जिससे तुम निर्भय होकर रह सकोगे और मैं निश्चिंत होकर वन विहार करके संध्या समय तक लौट आऊंगा।' मैंने योगी की बात में मूक सम्मति दे दी।

मैंने अन्य वस्त्र उतार दिये, किन्तु लक्ष्मीपुंज हार अपने मुंह में रख लिया। योगी ने मेरे मस्तक पर किसी गुटिका का तिलक किया और उस तिलक के प्रभाव से मैं तत्काल एक भयंकर नाग के रुप में बदल गया। उस योगी ने मुझे अलम्ब पर्वत की गुफा में छोड़ दिया।

कुछ समय बाद कुछ गारुड़िक वहां आ पहुंचे, उन्होंने मन्त्र बल से मुझे घड़े में बन्द कर दिया। मैंने सोचा-``यह कैसी आपत्ति आ गई ? ये गारुडिक न मालूम मुझे कहां ले जायेंगे और संध्या समय योगी के आने पर न मालूम उस योगी की क्या स्थिति होगी ?''

कुछ ही देर के बाद मुझे धनंजय यक्ष मन्दिर में लाया गया, जहां पुरुष रुप में रही मलया को दिव्य दिया जा रहा था।

ज्योंहि मैं घडे से बाहर आया, मैंने चारों ओर दृष्टि डाली और फिर अपनी प्रिया को प्रेम भरी निगाह से देखा। मुझे वह हार याद आ गया, मैंने वह हार अपने मुंह में से निकाल कर मलया को सौंप दिया।

``सर्प के रुप में महाबलकुमार ही था'' यह जानकर प्रजाजन अत्यन्त

विस्मित हो गए। महाबल के इस अद्भुत चरित्र को सुनकर सब लोग दांतों तले अंगुली दबाने लगे। फिर महाबल ने मन्त्री की ओर देखते हुए कहा, ``उस समय मुझे बहुत भूख लगी हुई थी, इस मन्त्री ने मेरे सामने दूध से भरा कटोरा रखा था, जिसे मैं प्रेम से पी गया था। फिर एक गारुडिक मुझे उठा ले गया और मुझे अलम्ब पर्वत की उसी गुफा में छोड़ दिया।

दिन का तीसरा प्रहर व्यतीत हो चूका था। दिन के चोथे प्रहर के अन्त में वह योगी आ गया। उसने मेरे मस्तक का तिलक मिटा दिया, जिससे मैं तत्काल अपने मूल रुप में आ गया। रात्रि होते ही योगी ने अपनी साधना की तैयारियां प्रारम्भ की। उसने अग्निकुण्ड में ईंधन तथा घी आदि डाल कर अग्नि प्रज्वलित की। पास में ही गोलाकार मण्डल की रचना की। योगी ने अपना आसन ग्रहण किया और मुझे शव लाने का आदेश दिया। योगीराज की आज्ञा स्वीकार कर मैं पुनः उस वृक्ष के समीप गया और उस शव को नीचे उतार कर योगीराज के पास आ पहुंचा।

योगी ने उस शव को स्नान कराया और उसे योग्य स्थान पर रख दिया। मैंने अग्नि को और अधिक प्रज्वलित किया। मैं उत्तर साधक के रुप में खड़ा रहा।

योगी ने अपना जाप प्रारम्भ किया। रात्रि के प्रथम दो प्रहर बीतने के बाद, वह शव अपने ही स्थान पर उछलने लगा।

तभी आकाश वाणी हुई, **``हे योगी पुरुष ! यह मृतक तो अशुद्ध है, अतः विद्या कैसे सिद्ध होगी ?''** इतना कहकर क्रोधावेश में रही उस देवी ने योगी को उठा कर अग्निकुण्ड में डाल दिया और वह शव पुनः इस डाल पर आकर लटक गया। उस देवी ने मुझे भी नाग-पाश में बांध दिया और इस वट वृक्ष की डाल पर उल्टा लटका कर चली गई। नागपाश के बन्धन से मेरा शरीर अत्यन्त जकड़ गया था, मुझे भयंकर वेदना हो रही थी। वह नाग कुछ गतिशील था, अतः जब उसकी पूंछ मेरे मुंह के पास आई, तब मैंने उसे जोर से चबा डाला, जिससे वह धरती पर गिर पड़ा।

निरन्तर उल्टा लटके रहने के कारण मुझे श्वास की तकलीफ होने लगी। हां ! विषापहार मन्त्र के प्रभाव से मुझे किसी प्रकार का जहर नहीं चढ़ा। दो प्रहर तक मैं यह वेदना सहन करता रहा, इतने में एक युवक यहां आया। ऐसा लगता है, उसके कहने पर ही आप सब यहां पधारे हैं और मुझे उस पीड़ा में से मुक्त किया है।'

इस प्रकार कुमार ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा-``हे पिताजी ! किसीं महा पुण्य के उदय से ही मुझे आपके पुनः दर्शन हुए ।

तभी किसी ने प्रश्न किया-`हे कुमार ! वह शव तो अक्षतांग दिखता है, फिर वह अशुद्ध कैसे ?''

तभी विचारों में खोए हुए महाराजा बोल उठे-``अरे हां ! उस शव ने उस स्त्री का नाक काट लिया था, इसी कारण वह शव अशुद्ध रह गया लगता है ।''

कुमार ने कहा-``पिताजी ! धन्य है आपको और आपकी सूक्ष्म बुद्धि को ! मैं इस बात को भूल गया था । मैंने वह घटना योगी को नहीं बताई । लगता है, इसी कारण वह योगी मारा गया होगा ।''

तभी महाराजा ने कुमार को कहा-``बेटा ! उस योगी ने अपनी साधना किस जगह पर की थी ?''

पिताजी की बात सुनते ही वह कुमार खड़ा हो गया । वह साधना भूमि की ओर आगे बढ़ा । महाराजा ने देखा कि उस अग्निकुण्ड में एक सुवर्ण पुरुष है । राजा ने अपने नौकरों को आदेश देकर उस सुवर्ण पुरुष को तत्काल अपने खजाने में डलवा दिया । सुवर्ण पुरुष की यह विशेषता होती है कि शाम के समय उसके काटे हुए अंग पुनः जुड जाते है । खुश होकर महाराजा ने कुमार आदि के साथ पुनः अपने नगर की ओर प्रयाण किया । शोक-यात्रा, स्वागत-यात्रा में बदल गई । चारों ओर महाराजा और महाबलकुमार की जय-जयकार होने लगी ।

१३. माया जाल

इधर महाराजा वीरधवल, महाबलकुमार और मलयासुन्दरी की इंतज़ारी कर रहे थे, क्योंकि भट्टारिका मन्दिर से महाबल और मलयासुन्दरी अभी तक नहीं लौटे थे । महाराजा ने रात्रि के अंतिम दो प्रहर बड़ी कठिनाई से व्यतीत किये थे । प्रातःकाल होने पर भट्टारिका मन्दिर की जांच की गई । बाहर चारों ओर सैनिक भेजे गए, किन्तु न महाबल के समाचार मिले और न ही मलयासुन्दरी के । फलतः महाराजा ने अन्य देशों से आये हुए राजकुमारों को विदाई दे दी ।

महाराजा चिन्तातुर थे । तभी वेगवती दासी बोल उठी-``स्वामीनाथ ! महाबलकुमार को पृथ्वीस्थानपुर जाने की बहुत जल्दी थी, मुझे लगता है कि वे शायद वहां पहुंच गए होंगें, अतः मलयकेतु को वहां भेजा जाय ।''

दासी की बात महाराजा को पसन्द पडी । उन्होंने तत्काल मलयकेतु को बुलाया और उसे पृथ्वीस्थानपुर जाकर महाबल और मलयासुन्दरी के समाचार लाने का आदेश दे दिया । कुमार ने भी राजा की आज्ञा शिरोधार्य की ! उसने पृथ्वीस्थानपुर की ओर प्रयाण किया । वह अपने साथियों के साथ आगे बढ़ता गया । मार्ग में आने वाले नगरों में भी उसने महाबल और मलयासुन्दरी की खोज की । तीन दिन की लम्बी यात्रा के बाद उसने अपने मित्रों के साथ पृथ्वीस्थानपुर में प्रवेश किया ।

राजमहल में प्रवेश करने से पूर्व उसने स्नानादि कर सुन्दर वस्त्र धारण किये, फिर वह राजमहल की ओर आगे बढ़ा और राजमहल में जाकर महाराजा से मिला ।

महाराजा ने कहा-, ``जिस दिन मलया का विवाह हुआ था, उसी रात्रि में महाबलकुमार, मलया के साथ भट्टारिका मन्दिर में ले गए थे, परन्तु आज तक उनके कोई समाचार नहीं मिले, इसलिए मेरे माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हैं, मैं उनकी शोध में निकला हूं ।''

महाराजा ने पूछा-``आपका आगमन कैसे हुआ ?''

कुमार ने कहा-``जिस दिन मलया का विवाह हुआ, उसी रात्रि में महाबलकुमार मलया के साथ भट्टारिका मन्दिर में गए थे, परन्तु आजतक उनके कोई समाचार नहीं मिले, इसलिए मेरे माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हैं, मैं उनकी शोध में निकला हूँ ।''

``अरे ! तुम महाराजा वीरधवल के पुत्र मलयकेतु हो'' ऐसा कह कर महाराजा ने हर्षित होकर अपने नौकर को आदेश दिया, ``जाओ, कुमार महाबल को तुरन्त बुलाओ ।''

नौकर महाबल को बुलाने चला गया ।

महाराजा ने कहा-``तुम्हारी बहिन और महाबलकुमार यहीं पर हैं ।''

कुमार मलयकेतु ने कहा-``वे कुशल तो हैं न ? उनकी चिन्ता में मेरे माता-पिता अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं ।''

महाराजा ने कहा-``वे दोनों यहीं हैं और क्षेम कुशल हैं ।'' तभी पिता की आज्ञा को प्राप्त कर महाबलकुमार दौड़ता हुआ तुरन्त वहां आ पहुंचा । ज्योंहि उसने मलयकेतु को देखा, त्योंहि उसने गद्‌गद् हृदय से उसका अभिवादन किया ।

फिर महाबल ने मलयासुन्दरी को मलयकेतु के आने के समाचार दिये । समाचार सुनते ही मलयासुन्दरी भाई को मिलने के लिए चल पड़ी । मलयासुन्दरी

अपने भाई से मिलकर अत्यन्त खुश हो गई । उसने उससे अपने माता-पिता के समाचार पूछे ।

मलयकेतु ने कहा-``बहिन ! तेरे इस प्रकार चले जाने से माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हो उठे । उन्हें दिन रात तेरी याद सताने लगी ।''

फिर मलयकेतु ने पूछा-``आप अचानक यहां कैसे पधार गए ?''

मलयासुन्दरी ने अपने भाई को वह पूरी घटना कह सुनाई । उस घटना को सुनकर मलयकेतु चकित हो गया । इस प्रकार बातों ही बातों में, दिन के दो प्रहर बीत गए । कुमार अपनी भूख-प्यास सब कुछ भूल गया ।

महाराजा ने भोजन की सुन्दर व्यवस्था कराई और मलयासुन्दरी ने बड़े ही स्नेह से अपने भाई को भोजन कराया । मलयकेतु ने एक रात्रि विश्राम किया ।

प्रातःकाल होते ही उसने महाराजा, महाबल और मलयसुन्दरी को कहा-``अब मुझे जाने की अनुमति दो ।''

महाबल ने कहा-``कल ही तो आप आए हो । अभी तो आपकी थकावट भी दूर नहीं हुई है, आपको इतनी जल्दी क्या है ?''

मलयकेतु बोला-`मैं तो यहीं ठहरना चाहता हूँ, परन्तु आप जानते हैं, आपके इस प्रकार चले आने से मेरे माता-पिता कितने चिन्तित हैं ? मलया के समाचार न मिलने पर कदाचित् वे आत्मघात न कर दें ?'' इस बात को सुनकर सब घबरा गए और अनिच्छा से उसे जाने की अनुमति दे दी ।

राजा ने कहा-``कुमार ! अपने पिताश्री को मेरा नमस्कार कहना और उन्हें बताना कि विपत्ति में होने से महाबलकुमार यहां आ पहुंचा, अतः उस कष्ट के बदले उसे क्षमा करें । आज से हमारा सम्बन्ध और भी दृढ़ बना है । महाबल और मलयासुन्दरी कुशल हैं, उनकी चिन्ता न करें ।

महाराजा सुरपाल, महारानी पद्मावती, महाबलकुमार और मलया-सुन्दरी आदि सभी मलयकेतु को नगर की सीमा तक छोड़ने के लिए गए । दो दिन की दीर्घ यात्रा के बाद मलयकेतु अपनी नगरी चन्द्रावती पहुंच गया । उसने वहां महाबल और मलयसुन्दरी की कुशलता के समाचार सुनाये, जिससे महाराजा वीरधवल और चंपकमाला पुनः आनन्द में आ गए ।

यह संसार बड़ा विचित्र है । यहां मानव कभी मस्ती में झूमने लगता है तो कभी दुःख और दर्द से कराहने लगता है ।

चंद्रावती की प्रजा इस समाचार को सुनकर प्रसन्न हो गई ।

महाबल और मलयासुन्दरी मानों साक्षात् कामदेव और रति के अवतार थे । आनन्द कल्लोल के साथ उनके दिन व्यतीत हो रहे थे । भौतिक सुख-सामग्री की उनके पास कमी नहीं थी । वे प्रजा के हित की पूरी चिन्ता करते थे । एक दिन जब वे महल के झरोखे में बैठकर नगर के दृश्य को देख रहे थे, तो महाबल की नजर पूर्व दिशा से आती हुई एक नकटी औरत पर पड़ी, जो राजमहल की ओर आ रही थी ।

महाबल ने कहा,-`प्रिये ! जरा देख, वह जो नकटी स्त्री आ रही है, उसी का रुदन सुनकर मैं तुझे एकाकी छोड़ कर जंगल की ओर गया था । लगता है वह मुझे मिलने आ रही है, क्योंकि मैंने उसे अपना परिचय दिया था ।''

मलया ने उस ओर नजर की कुछ निकट आने पर मलया ने उस स्त्री को देखा और वह तुरन्त बोल उठी-``ओहो ! यह तो वही मेरी विमाता कनक-वती लगती है । वह यहां कहां से आ गई ?''

महाबल ने कहा-``उसके आते ही तू पास में छिप जाना, अन्यथा वह तेरी शर्म से सत्य बात नहीं बताएगी ।''

मलया ने कहा-`जैसी आपकी आज्ञा ।'

थोड़ी ही देर बाद एक राज कर्मचारी महाबल के पास आ पहुंचा ।

उसने कहा-``प्रिय कुमार ! कोई अज्ञात नाक-कटी स्त्री आपसे मिलना चाहती है ।''

महाबल ने कहा-``उसे आने दो ।'' आदेश मिलते ही वह प्रतिहारी द्वार पर जा पहुंचा । उसने उस स्त्री को महाबल के भवन की ओर जाने की अनुमति दे दी । उस नकटी स्त्री ने महाबल के खण्ड में प्रवेश कर महाबल का अभिवादन किया । महाबल ने भी उसका अभिवादन किया और उसे बैठने के लिए आसन दिया ।

वह स्त्री बोली-`हे कुमार ! आपने उस दिन मेरे ऊपर जो उपकार किया था, उसका मैं किन शब्दों में वर्णन करुं ? आप तो परोपकारी पुरुष हो । आपके दर्शन के लिए इतनी दूरी से आई हूं ।''

कुमार ने कहा-``आपकी नाक की पीड़ा तो दूर हो गई है न ?''

पीड़ा तो शांत हो गई है, ``किन्तु नाक कट गई, उसका दिल में दर्द है ।''

कुमार ने कहा, ``अभी आप कहां रहती हो ?''

वह स्त्री बोली-``अभी तो मैं अलंब गिरि की गुफा में ही रहती थी, परन्तु अब मुझे एकाकी जीवन दर्द भरा लग रहा है। वहां धन-धान्य है, वैभव और विलास के साधन हैं परन्तु पति की मृत्यु के बाद अब यह जीवन शून्य-सा लग रहा है।''

कुमार ने कहा, ``आपका परिचय।'' वह स्त्री बोली-``कुमार! अब मैं आपसे क्या छिपाऊं? मैं अपनी सत्य घटना आपको बतला देती हूँ।''

``मेरा नाम कनकवती है, मैं चन्द्रावती के महाराजा वीरधवल की महारानी थी, किन्तु भाग्य ने पलटा खाया और बिना कसूर ही महाराजा ने मुझे नगर से निकाल दी। फिर किसी धूर्त के साथ हो गई। उसने मेरा कीमती सामान गायब कर लिया और मुझे पेटी में बन्द कर दी, फिर मुझे उस पेटी सहित गोला नदी में बहा दी। उस नदी में बहते-बहते, मैं काफी दूर निकल गई। भाग्यवश वह पेटी किसी यक्ष मन्दिर के पास रुक गई और वहां नदी तट पर खड़े लोभसार चोर ने वह पेटी देख ली, उसने वह पेटी बाहर निकाली। मैं बेहोश थी, कुछ देर बाद मुझे होश आया, और मैं उस पेटी से बाहर निकली। मैंने अपने वस्त्र ठीक किए। तत्पश्चात मेरे सुन्दर रुप को देखकर वह चोर मुझ पर मोहित हो गया। मैं भी अकेली थी, अतः मैंने उसकी बात स्वीकार की और पति-पत्नी के रुप में हमारा सम्बन्ध हो गया।

उसके बाद वह मुझे अपनी गुफा में ले गया। वहाँ उसने मुझे अपना पूरा खजाना बताया। उस खजाने को देखकर मैं दंग रह गई। उसमें बहुत से मूल्यवान हीरे-मोती के हार थे। इस प्रकार हमारा एक दिन तो आनन्द सहित बीता परन्तु दूसरे ही दिन भाग्य ने पलटा खाया।

लोभसार, राज-सैनिकों के फन्दे में फंस गया। महाराजा ने उसे फांसी की सजा का आदेश दिया और दूसरे ही दिन संध्या समय वट वृक्ष की डाल पर, उसे फांसी पर लटका दिया गया। थोडी ही देर बाद उसके प्राण पंखेरु उड़ गए।

मैं गुफा में बैठी हुई थी, संध्या तक मैंने उसके आगमन की प्रतीक्षा की। लम्बी इन्तजारी के बाद भी जब वह नहीं आया, तो मैं उसकी शोध में निकल पड़ी और अन्त में वट वृक्ष की डाल पर उसे मृतक के रुप में लटकते हुए देखा। उसे मृत जानकर मैंने करुण विलाप किया और वहीं पर मुझे आपके सर्व प्रथम दर्शन हुए।

महाबल बोला-``आपको बड़ी भयंकर विपत्ति से पार होना पड़ा है।''

कनकवती बोली-``जीवन में आपत्तियां तो आती है, परन्तु परोपकारी

पुरुष की सहायता से आपत्तियां दूर हो जाती हैं। आपने मुझ पर महान् उपकार किया था। अतः उस उपकार के बदले में, मैं अपने पति द्वारा लूंटा हुआ समस्त खजाना आपको बताना चाहती हूँ। इतने गुप्त भंडारों के स्वामित्व से मुझे क्या फायदा ? अतः आप मेरे साथ चलिए, मैं आपको खजाना बता दूंगी।''

महाबल कनकवती को महाराजा के पास ले गया और उसका सामान्य परिचय बतला कर बोला-``जिस लोभसार को आपने फांसी के फंदे पर चढाया था, उसकी यह पत्नी है और यह अपना समस्त खजाना आपको समर्पित करना चाहती है। अतः आपकी आज्ञा हो तो उस धन को ग्रहण किया जाय।'' महाराजा ने तुरन्त सम्मति दे दी।

महाबलकुमार राज कर्मचारियों के साथ अलंबगिरि पर्वत पर जा पहुंचा। कनकवती अपना खजाना बताती गई। महाबल ने उस खजाने को राजमहल में ले जाने की व्यवस्था कर दी। थोड़ी ही देर में सारा खजाना राजमहल में पहुंच गया।

महाराजा ने प्रजाजनों को सूचना दे दी कि जिसके भी माल की चोरी हुई हो, वह प्रमाण देकर अपना माल ले जाये। घोषणा सुनते ही प्रजाजन राजमहल में आ पहुंचे। महाराजा ने सबको अपना-अपना सामान सौंप दिया। महाबल ने कनकवती को रहने के लिए राजमहल का ही एक आवास खण्ड दे दिया। महाबल को समस्त खजाना सौंप देने के बाद कनकवती महाबल के महल में आ गई। अचानक ही उसने वहां लक्ष्मीपुंज हार और अन्य दिव्य वस्त्रों से विभूषित राजकुमारी मलयासुन्दरी को देखा।

मलयासुन्दरी को देखते ही उसका हृदय रोष से भर गया। वह मन ही मन सोचने लगी, यह दुष्टा अभी भी जीवित है और इसके पास लक्ष्मीपुंज हार कहां से आ गया ? इस दुष्टा ने ही मेरी यह दुर्दशा की है, अब इसे जब तक खत्म नहीं करुंगी, तब तक मुझे चैन से नींद नहीं आएगी।

कनकवती अपने विचारों में खोई हुई थी तभी मलयासुन्दरी अपने आसन से खड़ी होकर बोल उठी-``माताजी ! अचानक ही आपके दर्शन हो गए। कुशल तो हो न ?''

मन में वैर की अग्नि भड़की हुई होने पर भी स्नेह का दिखावा करती हुई कनकवती बोली-``पुत्री, तू भी कुशल है न !'' और फिर उसने स्नेह का आडम्बर दिखाकर इधर-उधर की बातें प्रारम्भ कर दी।

मलयासुन्दरी बुद्धिमान् अवश्य थी, किन्तु भद्र परिणामी थी, अतः वह

समझ न सकी कि कनकवती की अमृत भरी बातों की गहराई में भयंकर विष छिपा हुआ है, जो उसके जीवन को ही समाप्त कर देगा । कनकवती और मलयासुन्दरी की प्रथम मुलाकात प्रेम भरी रही, परन्तु वहां से विदा होने के बाद कनकवती मन ही मन आकुल-व्याकुल हो गई ।

उसने सोचा-``यह दुष्टा मेरी सारी करतूतों को जानती है और उन्हें प्रकट कर वह मेरे लिए भयंकर आपत्ति खड़ी कर सकती है, अतः सर्वप्रथम मुझे इसको खत्म करना होगा ।''

उसके बाद वह कई बार मलयासुन्दरी से मिली, हर समय वह प्रेम भरी बाते करती और मलया के मन को बहलाती । इसके साथ ही वह मलया-सुन्दरी के छिद्र का अन्वेषण भी करती । बहुत समय बीत गया, किन्तु उसे मलया में ऐसा कोई छिद्र प्राप्त नहीं हुआ, जिससे वह मलया को खत्म कर सके । वह अवसर की इंतजारी करने लगी ।

★ महाराजा अपनी बैठक में आसन पर बिराजमान थे । पास में अन्य कर्मचारी बैठे हुये थे ।

``महाराजाधिराज की जय हो'' कहते हुए महामन्त्री ने बैठक खण्ड में प्रवेश किया । तुरन्त ही महाराजा ने महामन्त्री को आसन ग्रहण करने का संकेत किया ।

महाराजा बोले-``मन्त्रीजी ! क्या समाचार लाये हो, उन लुटेरों को भगा दिया है न ?''

महाराजा आगे कुछ कहें, इसी बीच महामन्त्री बोले-``राजन् ! क्या कहूँ ! उन डाकुओं का आतंक दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । हमने अपनी छोटी सेना भेजी, किन्तु उसे भी करारी हार खानी पड़ी । यह समाचार सुनते ही महाराजा चौंक उठे और उनका क्षत्रिय खून उबल पड़ा ।

वे रोष में बोले-``यदि ऐसा ही है तो सेना को तैयार करो, मैं स्वयं युद्ध के मैदान में जाऊंगा । मैंने जीवन में **'हार'** शब्द कभी भी नहीं सुना । जाओ और सेना को तैयार करो, मैं शीघ्र ही प्रयाण करता हूँ ।'

महाराजा अपने प्रयाण की बात कर रहे थे, तभी महाबलकुमार ने बैठक खण्ड में प्रवेश किया । आते ही वह सारी परिस्थिति समझ गया ।

उसने कहा-``पिताजी ! आप कहां जाने के लिए प्रयाण की तैयारी कर रहे हो ?''

राजा ने कहा-``लड़ाई में जाने की ।''

मेरे होते हुए आपको लड़ाई में जाना, मेरे लिए कलंक समान है। लड़ाई के लिए मैं अभी प्रयाण करता हूँ।''

राजा ने कहा-``बेटा ! अभी तू छोटा है। उन डाकुओं से अपनी सेना भी परास्त हो चुकी है, अतः तेरा लड़ाई में जाना ठीक नहीं है।''

महाबल ने कहा-``पिताजी ! इस प्रकार कायरता की बात मत कीजिए ! मेरा पराक्रम तो मेरी तलवार बताएगी। आप मुझे आज्ञा प्रदान करे, उन डाकुओं को परास्त कर ही मैं चैन की सांस लूंगा।''

पुत्र के आग्रह को देख महाराजा ने महाबल को लड़ाई में जाने की अनुमति दे दी।

卐 卐 卐

★ महाबल मलयासुन्दरी के खण्ड में जा पहुंचा। मलयासुन्दरी गर्भवती थी। गर्भ के आठ मास पूर्ण हो चुके थे।

महाबल ने कहा-``प्रिये कुशल है न ! मैं कल पल्लिपति के खूंखार डाकुओं से लड़ाई के लिए जा रहा हूँ। मैं बहुत ही जल्दी शत्रुओं को जीत कर लौट आऊंगा।''

अपने प्रियतम के जाने की बात सुनते ही मलया की आंखें सजल हो गई।

वह बोली-``प्रियतम ! इस समय आप बाहर जाने की कैसी बात करते हो ? मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकूंगी, यदि आपको जाना है, तो मैं भी साथ चलूंगी।''

महाबल ने कहा-``प्रिये ! इतनी व्याकुल क्यों बन रही हो, धैर्य रखो, प्रजा की आपत्ति का निवारण करना क्या अपना कर्त्तव्य नहीं है ? साथ में चलने की बात ठीक नहीं है, क्योंकि अभी तुम सगर्भा हो, मार्ग में गर्भ की हिफाजत कैसे हो सकेगी ? तू चिन्ता न कर। माताजी तेरी हर प्रकार से संभाल रखेगी और मैं भी जल्दी लौटने की कोशिश करुंगा।''

मलया ने अपने पति को मूक सम्मति दी और कहा-``आप शीघ्र ही विजय प्राप्त कर आओ।''

दूसरे दिन युद्ध के लिए प्रयाण की तैयारी हो गई। महाबल एक मजबूत घोडे पर सवार हो गया। दिन भर की लम्बी यात्रा के बाद महाबलकुमार डाकुओं की पल्ली के निकट पहुंच गया। उसने वहां अपनी छावनी डाल दी।

कनकवती को पता चला `महाबलकुमार लड़ाई के लिए अन्यत्र चला गया है'- अतः वह बार-बार मलया के पास आने लगी और मीठी-मीठी बातें

करके उसके हृदय में अपना विश्वास पैदा करने लगी । भोली मलया कनकवती के विषाक्त हृदय को पहिचान न सकी । उसे कनकवती से प्रेम हो गया । वह अपने दिल की हर बात उसे कहने लगी । एक दिन मलया ने कहा-``माताजी ! दिन में तो आप मेरे मन को बहला देती हैं, परन्तु रात्रि में मैं अकेली होती हूँ । अतः यदि आपको तकलीफ न हो तो आप रात्रि विश्राम यहीं करें ।''

कनकवती ने कहा-``बेटी ! तेरी इच्छा है, तो मैं आज से यहीं आराम करुंगी । परन्तु राज कर्मचारियों से अनुमति ले लेना जरुरी है ।''

मलया ने कहा-``उन्हें मैं कह दूंगी, आप निश्चिन्त रहें ।''

कनकवती तो अवसर की तलाश में ही बैठी थी । अतः उसने एक षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया । अब वह रोज रात्रि में मलया के खण्ड में ही सोती और मलया से प्रेम भरी बातें करती ।

अचानक नगर में प्लेग की महामारी फैल गई । लोक दिन-प्रतिदिन मरने लगे । वैद्य लोग पूरा प्रयत्न कर रहे थे किन्तु लोगों की अकाल मृत्यु बंद नहीं हो रही थी । बीमारी के ये समाचार कनकवती के पास पहुंच गए । उसने एक दिन मलया से कहा-``तेरा गर्भकाल पूर्ण होने जा रहा है, निकट भविष्य में तुझे प्रसूति होने वाली है, जल्दी ही तू एक पुत्ररत्न की मां बनेगी । पिछले दो दिनों से मैं देख रही हूँ कि कोई राक्षसी रात्रि के समय इस महल के बरामदे में घूमती है और वह अनेक प्रकार की फुत्कार तथा आवाज करती है । मुझे लगता है कि इससे तेरे ऊपर आपत्ति आ सकती है । उसके लिए मैंने एक उपाय सोचा है, मन्त्र-तन्त्र के विषय में मैंने भी अध्ययन किया है, यदि तूं अनुमति दे तो मैं भी रात्रि में राक्षसी का रुप धारण कर उस राक्षसी को डराकर यहां से दूर भगा दूं, ताकि वह यहां फिर आने का नाम ही न ले ।''

मलया ने कहा-``माताजी ! आप तो मेरी हितैषिणी हो, आप जो कुछ करोगी, वह मेरे हित के लिए होगा अतः इसमें मेरी अनुमति है ।''

कनकवती मन ही मन अत्यन्त खुश हो गई, उसका मन मयूर खुशी से नाच उठा । क्योंकि अब उसका षड्यन्त्र साकार होने जा रहा था ।

मलया के खण्ड से निकल कर वह महाराजा के खण्ड की ओर आगे बढ़ी । उसने देखा कि प्लेग की इस बीमारी से महाराजा अत्यन्त चिंतित हैं और वे इस विषय में महामन्त्री से चर्चा कर रहे हैं । थोड़ी देर बाद महामन्त्री खण्ड

से बाहर निकल गए । तब अवसर देखकर कनकवती ने खण्ड में प्रवेश किया । कनकवती ने महाराजा को अभिवादन किया ।

महाराजा ने पूछा-``युवराज्ञी आनन्द में हैं न ?''

``हां महाराजा ! आनन्द में है लेकिन मैं आपको एक रहस्य बतलाने आई हूँ, यदि आप नाराज....।''

``अरे ! इसमें नाराजगी की बात ही क्या है ? जो कहो वह सत्य कहो ! प्रजा व राष्ट्र के हित की बात होगी तो उस ओर जरुर ध्यान दिया जायेगा ।''

कनकवती-``परन्तु क्या आप मेरी सत्य बात पर विश्वास करेंगे ?''

महाराजा-``सत्य को स्वीकार करना क्षत्रिय का प्रथम धर्म है ।''

कनकवती-``महाराजा ! आपको पता ही है कि नगर के अन्दर प्लेग की भयंकर बीमारी फैलती जा रही हैं, परन्तु यह सब कार्य योजनापूर्वक हो रहा है ।''

महाराजा-``जल्दी कह ! कौन है वह योजना बनाने वाला ? अभी उस दुष्ट का सिर धड़ से अलग कर दूं ।''

कनकवती-``कृपावतार ! उस व्यक्ति का नाम लेते हुए मेरा ह्रदय कांप रहा है, क्योंकि इस काम को करने वाली आपकी पुत्रवधु मलयासुन्दरी है ।''

महाराजा-``यह कभी नहीं हो सकता ।''

कनकवती-``आपको विश्वास नहीं हो, तो आज ही रात्रि काल में उसका नाटक देख लेना । रात के दूसरे प्रहर में राक्षसी का रुप धारण कर वह अपने मुंह से फुत्कार करती है । उसी हवा से पूरे नगर में प्लेग की बीमारी फैल रही है ।

कनकवती ने यह सब एक साथ में कह दिया ।

महाराजा ने कहा-``यदि ऐसा ही है तो आज रात को मैं प्रत्यक्ष देख लूंगा ।''

बात पूर्णकर कनकवती वहां से चली गई । वहां से वह बाजार में गई और राक्षसी के योग्य सामग्री लेकर संध्या समय में ही मलया के खण्ड में आ गई । रात्रि के प्रथम प्रहर में ही कनकवती ने मलया को सुला दिया । पास ही के खण्ड में जाकर उसने राक्षसी का रुप तैयार किया, शरीर पर काला रंग चढ़ाया, मुंह पर लाल रंग लगाया, गले में कौड़ियों का हार पहना, घुटने तक लहंगा पहना और मुंह में जलती हुई लकड़ी पकड़ ली । राक्षसी के अनुरुप वेष

को पहन कर वह महल के झरोखे में पहुंच गई और महाराजा को किये गये संकेत के अनुसार वह नाटक करने लगी ।

दूर की इमारत से महाराजा ने यह सब नाटक प्रत्यक्ष देखा ।

उन्होंने सोचा-``ओहो ! मेरी पुत्रवधु तो राक्षसी है, उसने मेरे कुल को कलंकित कर दिया है । वह फुत्कार द्वारा महामारी फैला रही है ।'' तत्काल उन्होंने सैनिकों को आदेश दिया ``उस मलया को पकड़ लो ।'' सैनिक भागे । सैनिकों के आगमन के संकेत को जानकर कनकवती घबराई, उसने मलया को जगा कर कहा-``लगता है महाराजा ने मुझे देख लिया है, मुझे बचा दो, मुझे छुपा दो ।''

मलया तुरन्त जग गई । उसने कनकवती को एक छिद्र वाली पेटी में डाल दी और बाहर से ताला लगा दिया । तत्पश्चात् वह अपनी शय्या पर जाकर लेट गई ।

महाराजा के सैनिक दौड़ते हुए मलयासुन्दरी के महल में आ गए । एक सैनिक ने आवाज दी तो मलया खड़ी हो गई । उसने अपना दरवाजा खोला । दरवाजा खुलते ही यमराज के समान क्रूर सिपाही मलया के खण्ड में जा पहुंचे और उन्होंने मलया को घेर लिया ।

एक सैनिक ने मलया को कहा-``महाराजा ने आपको शीघ्र ही रथ में बैठने की आज्ञा दी है ।''

मलयासुन्दरी सोच में गिर गई, `मध्य रात्रि में महाराजा ने ऐसी आज्ञा क्यों दी होगी ?'

महाराजा की आज्ञा शिरोधार्य कर मलया महल से नीचे उतरने लगी । नीचे रथ तैयार था, उसे रथ में बैठने को कहा गया । मलयासुन्दरी ने रथ में अपना स्थान ग्रहण किया । वह कुछ भी समझ नहीं पा रही थी कि उसे इस प्रकार कहां ले जाया जा रहा है ? दिल में उत्पन्न अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों से मलयासुन्दरी आकुल-व्याकुल हो गई । मलयासुन्दरी के रथ में बैठने के साथ ही सारथी ने रथ को तेजी से हंकार दिया । रथ पवन वेग से आगे बढ़ने लगा और नगर की सीमा को पार कर भयंकर जंगल में जा पहुंचा ।

चारों ओर घोर अंधकार था । दूर-सुदूर जंगली पशुओं की चित्कारें सुनाई दे रही थी । रथ में एक सारथी और दो क्रूर चांडाल थे । अन्त में मलयासुन्दरी ने साहस कर पूछा-``यह रथ कहां ले जाया जा रहा है ?''

``भयंकर वन में'' मलया को जवाब मिला ।

मलया ने पूछा-`क्यों ?'

उत्तर मिला-``महाराजा का आदेश है कि भयंकर वन में ले जाकर तुम्हारी हत्या कर दी जाए ।'' इतना सुनते ही मलया का कोमल दिल कांप उठा ।

मलयासुन्दरी इस विचित्र पहेली को कुछ समझ न सकी । उसने अपने जीवन की पिछली घटनाओं का निरीक्षण किया, परन्तु उसे ऐसी कोई बात याद नहीं आई कि जिसके कारण उसे मौत की सजा मिल सके ।

वह सोचने लगी-`मेरा सतीत्व निष्कलंक है, मैंने किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया है, फिर भी मुझे मृत्युदण्ड ! ओहो ! यह सब क्या हो रहा है ?

मलया तत्वज्ञान के चिंतन में डूब गई । प्रारम्भ में महाराजा की अज्ञानता का विचार करने वाली मलया अब स्वकृत कर्म का विचार करने लगी । **जो कुछ होता है, वह स्वकृत कर्म का ही फल है । अन्य व्यक्ति तो अपने सुख-दुःख में निमित्त मात्र हैं ।**

कर्मवाद का चिन्तन आत्मा को निर्भय बनाता है । कर्मवाद की अज्ञानता से व्यक्ति अपने सुख-दुःख में दूसरे के निमित्त को मुख्य मानकर उस निमित्तक पर दोषारोपण करता है और व्यर्थ ही राग-द्वेष कर अपनी आत्मा को कर्म के जाल में फंसा देता है, जबकि कर्मवाद का ज्ञाता अपने सुख-दुःख में स्वकृत कर्म को मुख्य मानता है और उसी पर दोषारोपण करता है । कर्मवाद के ज्ञान से आत्मा राग-द्वेष से मुक्त बनती है ।

मलया कर्मवाद के रहस्य की पूर्ण ज्ञाता थी अतः उसने अपने इस दुःख में भयंकर भी न तो महाराजा को दोषित माना और न ही कनकवती को दोष दिया । दो प्रहर तक रथ आगे बढ़ता गया । रात्रि का अन्तिम प्रहर चल रहा था, पूर्व दिशा में लालिमा छा गई थी । रथ को भयंकर जंगल में थाम दिया गया और मलया को नीचे उतरने का आदेश दिया गया । साहस कर मलया रथ में से नीचे उतरी । महाराजा का आदेश था कि मलया को भयंकर जंगल में ले जाकर मार दिया जाए, परन्तु मलया की दशा देखकर चांडाल का हृदय भी द्रवित हो गया ।

उसने सोचा-`यह राजकुमारी प्रेम और स्नेह की साक्षात्मूर्ति है । महाराजा ने क्रोध में आकर यह कैसी आज्ञा कर दी ? इस स्त्री पर तलवार का प्रहार करते हुए तो हमारे हाथ भी काम नहीं कर रहे है । महाराजा ने क्रोधावेश में आकर ऐसी आज्ञा करके भयंकर भूल कर दी है, परन्तु हम इस भूल का पुनरावर्तन क्यों करे ?'' **यदि यह सती होगी, तो स्वतः इस विकट वन में**

इसकी रक्षा हो जाएगी और यदि असती होगी तो इस वन में स्वतः मर जाएगी ।'' ऐसा सोच कर चंडाल ने मलयासुन्दरी की हत्या न कर अपने रथ को पुनः नगर की ओर हंकार दिया ।

भयंकर वन में मलया को एकाकी छोड़ कर चले आने का दुःख चांडाल के हृदय को भी बींध रहा था, परन्तु महाराजा की आज्ञा के आगे वे लाचार थे । अतः धीरे-धीरे वे आगे बढ़े और अपने नगर में आ पहुंचे ।

१४. भयंकर आघात

महाबल और पल्लिपति के बीच घमासान युद्ध हुआ । महाबल ने अपना विशेष पराक्रम दिखलाया । युद्ध बहुत दिनों तक चला । अन्त में महाबल ने अपनी तलवार से पल्लिपति का शिरोच्छेद कर दिया । महाबल की सेना के जय-जयकार की ध्वनि से आकाश मण्डल गुंज उठा । पल्लिपति की मृत्यु हो जाने से शेष बचे डाकुओं ने आत्म-समर्पण कर दिया । महाबल अपनी विजय ध्वजा को फहराता हुआ पृथ्वीस्थानपुर की ओर चल पड़ा ।

महाबल को अपनी प्रिया से अलग हुए २५ दिन बीत चुके थे । युद्ध के वातावरण में महाबल सब कुछ भूल गया था, परन्तु ज्योंहि वह अपने नगर की ओर आगे बढ़ने लगा, उसे मलया की याद सताने लगी । उसके हृदय में उत्साह की विविध तरंगे उछल रही थी ।

वह सोच रहा था कि मलया ने पुत्ररत्न को जन्म दे दिया होगा, अब उस पुत्ररत्न के दर्शन होंगे, इस प्रकार की अनेक कल्पनाओं से महाबल का हृदय आनन्द में डूबा हुआ था । दो तीन दिन की यात्रा के बाद महाबल अपने नगर के निकट आ गया ।

महाराजा को समाचार मिले कि कल प्रातः ही कुमार नगर में आ जाएगा । कुमार की इस विजय यात्रा के समाचार से महाराजा के हृदय में आनन्द का पार नहीं था । अपने पराक्रमी पुत्र से मिलने के लिए उनके हृदय में अपूर्व उत्कंठा थी । नगर के प्रजाजन भी महाबल के स्वागत के लिए उत्सुक थे । कुमार का स्वागत करने के लिए महाराजा तथा प्रजाजन नगर के बाहर आ गए । महाबल ने सेना सहित नगर में प्रवेश किया । आगे-आगे विजय ध्वज फहरा रहा था । महाराजा को देखते ही कुमार नतमस्तक हो गया । उसने पिता के चरणों में नमस्कार किया । महाराजा ने उसे अपने गले से लगाया तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने पर बधाई दी ।

स्वागत यात्रा नगर के मुख्य बाजारों से होती हुई राजमहल की ओर आगे बढ़ी। राजमहल से आई अनेक स्त्रियों में उसे कहीं भी मलया दिखाई नहीं दी। वह मलया से मिलने के लिए उत्सुक था।

उसने अपनी माता से पूछा-'पुत्र-वधु तो कुशल है न !' इस प्रश्न पर मां कुछ मौन रही, परन्तु महाराजा ने कहा-``महल में जाने के बाद बात करेंगे।'' स्वागत यात्रा समाप्त हो गई, समस्त प्रजा इधर-उधर बिखर गई। कुमार महाराजा के खण्ड में गया।

महाराजा ने कहा-``पुत्र ! अब तू मलया को भूल जा। उससे भी अधिक रुपवती कन्या के साथ तेरा विवाह....।'' सुनते ही महाबल तो किंकर्तव्यमूढ़ हो गया।

``पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हो ? मलयासुन्दरी जैसी स्त्री के लिए आप...।'' महाबल कुछ बोल न पाया। महाराजा ने आरम्भ से लेकर अन्त तक की सारी घटना सुना दी।

महाबल ने कहा-``पिताजी ! आपके हाथों से एक घोर अन्याय हो गया है। मलयासुन्दरी एक निर्दोष और शील सम्पन्न नारी है। कनकवती को आपने पहिचाना नहीं, वह एक दुष्ट चरित्रवाली स्त्री है, मुझे शीघ्र बताओ, वह दुष्टा कनकवती कहां है ? मैं उससे सत्य की जानकारी प्राप्त करुंगा।''

महाराजा बोले-``महाबल ! कनकवती ने सब कुछ सत्य कहा था और उसने जो कहा था, वह मैंने प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देखा था।''

``परन्तु वह कनकवती कहां है ?'' महाबल कुमार ने पूछा।

``पुत्र ! मैं भी उसे ढूंढ रहा हूँ, परन्तु इस घटना के बाद उसका कोई अता-पता नहीं है।'' राजा ने उत्तर दिया।

कुमार ने कहा-``पिताजी ! उस निर्दोष नारी की हत्या कर आपने मेरे जीवन को भी समाप्त कर दिया है।'' इतना कहा कर कुमार अपने महल की ओर आगे बढ़ गया।

कुमार ने देखा कि महल के समस्त दरवाजों पर ताले लगे हुए हैं और वहां चौकीदार खड़े हैं।

कुमार ने कहा-``यहां ताले कब से लगे हैं ?''

प्रतिहारी बोला-``तीन दिन से।''

कुमार ने कहा-``सब द्वार खोल दो।''

कुमार की आज्ञा पाते ही महल के सब दरवाजे खोल दिए गये। महल

में प्रवेश करते ही कुमार को मलया की याद सताने लगी ।

कुमार अपने शयन खण्ड में जा पहुंचा । उसने सोचा, ``शायद यहां से जाने के पूर्व मलया ने कोई संकेत लिख दिया हो ?''

परन्तु कुमार को वहां कहीं भी कोई संकेत नहीं मिला । कुमारने मलया की विविध वस्तुओं का निरीक्षण किया ।

अन्त में उसकी नजर उस पेटी की ओर गई, जिसमें कनकवती छीपी बैठी थी । ज्योंहि उसने उस पेटी को खोला, उसके आश्चर्य का पार न रहा । पेटी में, तीन दिन की भूखी प्यासी कनकवती बेहोश पड़ी थी ।

कुमार ने तुरन्त महाराजा को बुलाने का आदेश दिया । कुमार के संकेत को जानकर महाराजा शीघ्र आ गए । ज्योंहि महाराजा ने राक्षसी के वेष में रही हुई उस कनकवती को देखा, वे भी दिग् मूढ़ होकर सोचने लगे-``ओहो ! इस दुष्टा ने ही मेरे कुल को कलंकित करने का भयंकर षड्यन्त्र रचा है ।''

महाराजा कुछ भी बोल न पाए । अपने हाथों से की गई भूल के लिए पश्चाताप के सिवाय उनके पास और कोई चारा नहीं था । महाराजा की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी ।

वे सोचने लगे-``ओहो ! आज सत्य का घटस्फोट हो गया । मेरे हाथों से भयंकर भूल हुई । सती शिरोमणी पुत्र-वधु की हत्या कर मैंने भयंकर पाप अर्जित किया है ।'' महाराजा ने तत्काल उस दुष्टा कनकवती को देश निकाल की सजा कर दी ।

महाराजा, महारानी और महाबल की चिंता का पार नहीं था । महाराजा को अपनी भूल शूल की भांति चुभ रही थी । महाबल अत्यन्त व्याकुल था ।

महाबल ने दिन भर कुछ भी भोजन ग्रहण नहीं किया था । उसकी व्याकुलता ने महाराजा और महारानी का आनन्द समाप्त कर दिया । महाबल अत्यन्त निराश बन चुका था, परन्तु दूसरे दिन उसे निराशा के घनघोर बादलों के बीच आशा की एक किरण चमकती हुई नजर आई ।

विश्व में काल का चक्र घूमता रहता है, वह कभी अनुकूल सामग्री लाकर खड़ी कर देता है तो कभी प्रतिकूल सामग्री । दोनों सामग्रियां क्रमशः बदलती रहती हैं । अनुकूलता के बाद प्रतिकूलता और प्रतिकूलता के बाद अनुकूलता, सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख, यह परिवर्तन होता रहता है । परन्तु यह मूढ़ात्मा अज्ञानता के कारण अनुकूल प्रसंग में अत्यन्त

आसक्त बन जाती है और कुदरत जब उसकी अनुकुलता छीन लेती है, तो वह अत्यन्त निराश बन जाती है ।

दूसरे दिन महाराजा राजसभा में पधारे । देश-विदेश में भ्रमण करता हुआ एक निमितिज्ञ वहां आ पहुँचा । उसने हाथ जोड़ कर महाराजा का अभिवादन किया । महाराजा ने भी उसे योग्य स्थान पर बैठने का संकेत किया ।

राजसभा की दैनिक चर्या समाप्त होने के बाद महाराजा ने निमितज्ञ का परिचय पूछा ।

महाराजा को ज्ञात हुआ कि वह अष्टांग निमितज्ञ है और उसकी प्रसिद्धि देश-विदेश में दूर-सुदूर तक फैली हुई है । जब उन्हें उसके अनुभव ज्ञान का पता चला तो उनके आनन्द का पार न रहा ।

महाराजा ने सोचा, ``इससे मलयासुन्दरी के बारे में जानकारी अवश्य मिल सकती है ।''

महाराजा ने प्रश्न किया-, `पहले यह बताओ कि मेरी पुत्र-वधु जीवित है या मर गई है ?'

निमितज्ञ ने कुछ गणित किया, फिर बोला-``आपकी पुत्र-वधु जीवित है ।''

यह सुनते ही महाराजा-महारानी और महाबल के आश्चर्य का पार नहीं रहा । महाराजा ने सोचा, मैंने उन चाण्डालों को मारने की आज्ञा दी थी, तो क्या उन्होंने उसे नहीं मारा होगा ? पहले उसकी जांच कर लूं ।

महाराजा ने तुरन्त उन चाण्डालों को बुलाने का आदेश दिया । महाराजा की आज्ञा सुनते ही वे चाण्डाल अपना कार्य छोड़ कर राजसभा में आ गए ।

``क्या तुमने मलयासुन्दरी का वध नहीं किया था ?'' दोनों चाण्डाल प्रश्न सुनते ही थर-थर कांपने लगे ।

महाराजा ने कहा-``जो किया हो सत्य कहो, अन्यथा...।''

भय से कांपता हुआ एक चाण्डाल बोला-``महाराजाधिराज ! आपकी आज्ञा तो उस कन्या का वध करने की थी, परन्तु उस कन्या के निर्दोष चेहरे को देखते हुए हमारी तलवार उस कन्या पर नहीं चल पाई । हमने सोचा, ``इस निर्दोष कन्या का अपने हाथों से वध कर अपनी आत्मा को अधिक मलिन क्यों करें ? यदि यह दोषी होगी तो इस भीषण वन में बचने वाली नहीं है ।' हम उसे भीषण वन में छोड़ कर चले आये ।

चाण्डाल की बात सुनकर महाराजा सोचने लगे, `अहो ! इन चाण्डालों में भी उसके प्रति दया का भाव था और मैं...मैं कितना निष्ठुर बन गया !'

महाराजा को निमितज्ञ की बात पर विश्वास हो गया ।

महाराजा ने आगे पूछा-``वह कन्या अब कहां है ?''

निमितज्ञ ने कहा-, `वह जीवित अवश्य है, किन्तु कहां है, उसका निश्चित स्थान नहीं कह सकता ।'

महाबल ने पूछा-``क्या वह सुन्दरी मुझे पुनः प्राप्त होगी ?''

निमितज्ञ ने कुछ गणित करते कहा-, ``एक वर्ष के अन्त में आपको वह देवी मिल जायेगी ।'' यह सुनकर महाबल प्रसन्न भी हुआ और उदासीन भी ।

मलयासुन्दरी जीवित है, के समाचार से महाबल को आनन्द हुआ, किन्तु वह एक वर्ष बाद मिलेगी, इससे उसको बहुत बड़ा दुःख हुआ । महाराजा ने निमितज्ञ का सत्कार किया और उसको विदाई दी ।

महाबल अपने महल में आ गया, परन्तु मलया के अभाव में उसे सब शून्य लग रहा था । उसका सारा आनन्द अपनी जीवन-संगिनी के अभाव में समाप्त हो चुका था । वह कभी नगर के दृश्यों को देखता तो कभी उद्यान की ओर । कभी पलंग पर बैठता तो कभी शय्या पर सो जाता । परन्तु उसे कहीं भी आनन्द नहीं मिल पा रहा था । उसने निश्चय किया कि मुझे मलया की शोध में जाना चाहिये । एक रात जब सभी लोग निद्राधीन थे, चारों ओर नीरव शांति थी । महाबल ने अपनी तलवार कमर में बांधी, गुटिका साथ में ली और अश्वशाला में से एक अश्व को पसंदकर उसने राजमहल छोड दिया । घोर रात्रि में घोड़े की सवारी करता हुआ वह नगर से दूर-सुदूर चला गया ।

प्रातःकाल हुआ । महाराजा ने कुमार के आगमन की प्रतीक्षा की ।

उन्होंने सोचा, ``प्रतिदिन तो कुमार शय्या से उठते ही नमस्कार के लिए आता था, आज अभी तक क्यों नहीं आया ?''

अन्त में महाराजा की आज्ञा से महामन्त्री ने कुमार के खण्ड में प्रवेश किया, उसने देखा, ``शय्या खाली पड़ी है ।'' महामन्त्री ने आकर महाराजा को समाचार दिए तो महाराजा का चेहरा उदास हो गया । उसकी शय्या पर रही चिट्ठी महाराजा ने पढ़ी और वे समझ गये कि कुमार मलया की शोध में निकल गया है, अतः चिन्ता करने की जरुरत नहीं है ।

महाबल के चले जाने से महारानी भी चिंतातुर हो गई, परन्तु महाराजा ने उसे समझा-बुझाकर शांत कर दी । महाराजा ने चन्द्रावती नगरी में भी महाबल और मलयासुन्दरी की खोज में अपने गुप्तचर भेजे, परन्तु कहीं से कोई समाचार नहीं मिले ।

१५. कामांध बलसार

भयंकर और भीषण जंगल !

चारों ओर हिंसक पशुओं की गर्जना सुनाई दे रही थी । चाण्डाल तथा सारथी, मलया को रथ से उतार कर नगर की ओर चल पड़े थे । उस शून्य अरण्य में एकाकी मलयासुन्दरी भय के मारे कांप रही थी ।

प्रारम्भ में तो वह भी अशुभ ध्यान में चढ़ गई । वह सोचने लगी- ``अहो ! महाराजा की यह कैसी आज्ञा ? मैंने आज तक उनका कोई अपमान नहीं किया, मैंने किसी भी प्रकार से अपने शील का खण्डन नहीं किया । अपने कुल को कलंकित करनेवाली कोई चेष्टा नहीं की और फिर भी मुझे यह सजा ? क्या महाराजा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई ? उन्होंने मुझे मेरा अपराध भी नहीं कहा और मेरे स्वामी के आगमन की प्रतीक्षा भी नहीं की । क्या हालत होगी मेरे प्रियतम की ? क्या वे मेरी विरह-वेदना सहन कर पायेंगे ? ओ वज्र हृदयी महाराजा ! आपने मेरे गर्भ का भी विचार नहीं किया...? और इसी चिन्तन धारा में मलयासुन्दरी फूट फूटकर रोने लगी ।

अचानक ही उसे महाबल द्वारा प्रदत्त वह श्लोक याद आ गया और उसके मुख पर से उदासीनता गायब हो गई ।

वह सोचने लगी-**``जो कुछ भी होता है, वह स्वकृत कर्म के अनुसार ही होता है, अत: व्यर्थ में ही संकल्प-विकल्प के कुजाल में फंस कर अपनी आत्मा को मलिन क्यों करुं ?''** इस प्रकार के चिंतन से मलयासुन्दरी को शांति मिली । वह निर्भय हो गई । वह आस-पास के वातावरण को देखने लगी । पास में एक छोटी सी नदी बह रही थी । नदी के तट पर वृक्ष की घनी झाड़ियां थी, हिंसक पशुओं से बचने के लिए उसने एक सुरक्षित स्थान खोज लिया । उसने चारों ओर से घास इकट्ठी की । फिर तृण की शय्या बना कर रात्रि प्रारम्भ होते ही सो गई ।

भाग्य की लीला को कोई जान नहीं सकता । राजमहलों के दिव्य सुखों में लीन रहने वाले को वह राज मार्ग पर भटकने वाला एक याचक बना देता है ।

तृण की शय्या पर सोई हुई मलया कर्मविज्ञान की विचित्रताओं का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगी । कहां मखमल की सुकोमल शय्या और कहां अत्यन्त कठोर कष्टदायी भू शय्या ? मलया सोच रही थी, **``भूतकाल में किये गये**

कर्मों का हिसाब तीर्थंकरों को भी चुकाना पड़ता है तो फिर मैं तो एक साधारण आत्मा हूँ । मैं अपने दुष्कृतों के फल से कैसे बच सकती हूँ ?''

मलया गर्भवती थी, परन्तु अब उसका गर्भ काल पूर्ण होने आया था ।

रात्रि के तीसरे प्रहर में उसे प्रसव की तीव्र पीड़ा हुई और उस पीड़ा के बाद, उसने उस भयंकर वन में एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । उसे एक ओर प्रसव की पीड़ा का दुःख था, तो दूसरी ओर पुत्र जन्म का आनन्द भी था । प्रातःकाल होते ही उसने अपनी अशुचि साफ की । पास में ही एक नदी बह रही थी । उसने नदी के जल में स्नान की और स्वच्छ होकर अपनी कुटिया में आ गई ।

प्रातःकाल के मंगल प्रभात में उसने सर्वप्रथम पुत्ररत्न के दर्शन किए, फिर वह अपने पुत्र को संबोधित कर कहने लगी, ``बेटा ! कैसी दुर्भाग्य की घड़ी है कि तेरे जन्म पर आज मुझे कोई बधाई देने वाला नहीं । यह मेरा दुर्भाग्य है कि तेरा जन्म राजमहल में न होकर यहां जंगल में हुआ है । यदि भाग्य अनुकूल होता तो नगर की समस्त प्रजा मुझे बधाई देने आती । नगर में तेरे जन्म का भव्य महोत्सव मनाया जाता और तेरे तेजस्वी मुख को देख तेरे पिता तुझ पर स्नेह की वर्षा करते ।

``पुत्र उत्पन्न होने से मलया को एक ओर यह लाभ था कि वह अपना समय पुत्र की सेवा और उसके लाड़-प्यार में व्यतीत कर सकती थी । अतः अब उसे अकेलापन नहीं लग रहा था ।

प्रातःकाल में उसे तीव्र भूख लगी । पास में ही सुन्दर फलों से युक्त घटादार वृक्ष थे । मलया कुछ फल ले आई । उसने फलाहार किया । पुत्र को स्तनपान कराया और वह अपना समय धैर्य्य और शान्ति के साथ व्यतीत करने लगी ।

卐 卐 卐

सागरतिलक नगर का बलसार नामक एक समृद्ध सार्थवाह विदेश यात्रा के बाद अपने घर लौट रहा था । उस सार्थवाह के साथ बहुत-सी बैलगड़ियां, अनेक घोड़े और बहुत से मजदूर कर्मचारी थे । वह सार्थवाह उसी भीषण वन को पार कर रहा था । लम्बी दूरी तय करने के कारण उस सार्थवाह ने उसी जंगल में पडाव डाला था ।

मध्याह्न हो जाने से सभी थके हुए थे । सबको भूख लगी हुई थी । अतः सार्थवाह के आदेश से कुछ कर्मचारी ईंधन तथा जल आदि लेने के लिए इधर-उधर चले गये ।

बलसार सार्थवाह भी घोड़े पर सवार होकर इधर-उधर टहलने लगा ।

अचानक एक बालक के रुदन की ध्वनि उसके कानों में गिरी । उसने तत्काल अपने घोड़े को उस ओर मोड़ा । घोड़े से नीचे उतर कर वह रुदन की दिशा में 25-30 कदम आगे बढ़ा । उसकी नजर मलयासुन्दरी पर गिरी । मलयासुन्दरी का रुप साक्षात् रति के तुल्य था ।

वह सोचने लगा-``देवलोक की अप्सरा के रुप को भी परास्त करने वाली यह नारी यहां कहां से ? शायद मेरा भाग्य ही इसे यहां खींच लाया है ।'' इन विचारों से बलसार सार्थवाह अत्यन्त कामातुर हो गया ।

वह मलया के निकट पहुंच गया ।

सार्थवाह ने कहा-``हे सुन्दरी ! तू कौन है ? इस भीषण वन में तू यहां अकेली कैसे ?'' मैं सागरतिलक नगर का बलसार नामक सार्थवाह हूँ । मैं तेरी हर आपत्ति को दूर करने में समर्थ हूँ । यदि तू मुझे स्वीकार करेगी तो तूं दिव्य सुखों की भोक्ता बन जाएगी ।''

मलया को ये शब्द अत्यन्त ही कटु लगे । उसे इन शब्दों में शील के संकट की आशंका दिखाई दे रही थी ।

उसने सोचा-``शील का संरक्षण अनिवार्य है,'' अतः उसने कहा-``मैं एक चांडाल की पुत्री हूँ, पति से झगडा हो जाने के कारण इस वन में आ गई हूं और कुछ समय बाद अपने माता-पिता के पास चली जाऊंगी ।''

मलया ने युक्ति से जवाब दिया था, किन्तु इससे बलसार की कामवासना शांत नहीं हो पाई । वह तो मलया के रुप को देखकर अधिकाधिक कामुक हो रहा था ।

उसने कहा-``हे सुन्दरी ! तेरा सुन्दर रुप ही तेरे वास्तविक कुल को बता रहा है, तू व्यर्थ ही माया जाल क्यों रचती है ? अतः तू मेरे साथ चल । मैं तुझे अपनी पत्नी बनाऊंगा और तेरी हर इच्छा पूर्ण करुंगा ।'' सार्थवाह के शब्दों से मलया घबरा गई ।

सार्थवाह ने देखा कि यह स्वेच्छा से नहीं आयेगी । अतः उसने युक्ति का सहारा लिया । वह कुछ आगे बढ़ा और मलया के पास से उसके पुत्ररत्न को खींचकर अपने पड़ाव की ओर आगे बढ़ गया । मलया के दुःख का पार नहीं रहा । **``इतो व्याघ्र इतस्तटी''**, एक ओर व्याघ्र तो दूसरी ओर भयंकर नदी । सार्थवाह के हाथों में वह नन्हा बालक चिल्ला रहा था और मलया का मातृ-हृदय टूट-टूट रहा था । पुत्र की हृदयभेदी पुकार को सुनकर मलया अत्यन्त बेचैन हो गई । एक ओर शील का प्रश्न था तो दूसरी ओर पुत्र के जीवन का । वह जानती

थी कि यह छोटा-सा बालक मातृ-प्रेम के बिना जीवित नहीं रह पाएगा । मलया जोरों से चिल्लाई, `अरे ओ दुष्ट सार्थवाह ! मुझे मेरा पुत्र वापस दे ।'' बलसार ने मलया की एक भी नहीं सुनी और वह आगे बढ़ता गया ।

उसने सोचा-``शील का रक्षण करना तो मेरे हाथ की बात है, परन्तु पुत्र का रक्षण मेरे गए बिना नहीं हो सकता । शील के रक्षण के लिए जो भी आपत्ति आएगी, उसे मैं सहन कर लूंगी । अभी तो पुत्र को बचाना जरुरी है ।''

मलया अपने मातृ-हृदय को रोक न सकी और वह भी उस सार्थवाह के पीछे-पीछे चल पड़ी । बलसार के तम्बू में आने पर मलया ने अपने पुत्र की प्राप्ति के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु इसने उसकी एक न सुनी ।

बलसार ने कहा-``तू मेरे साथ सागरतिलक चले तो तुझे तेरा पुत्र मिल जाएगा ।''

अनिच्छा होने पर भी आपत्ति से घिरी मलया ने उसकी बात स्वीकार कर ली । थोडे ही समय बाद बलसार सार्थवाह प्रयाण की तैयारी करने लगा । मलया को पुत्र सौंप दिया गया और उसे एक अलग रथ में बिठा दिया गया । बलसार ने उसकी सेवाशुश्रुषा आदि के लिए एक दासी नियुक्त कर दी और उसे कहा, `इस सुन्दरी की हर इच्छा पूर्ण करना ।'

बलसार ने सोचा-``यह सुन्दरी अभी नई-नई है और अपरिचित होने से कुछ आनाकानी कर रही है, परन्तु जब उसे मेरे दिव्य वैभव का पता चलेगा, तब वह स्वतः ही मेरे वश हो जाएगी ।''

बलसार ने मलया के भोजन-वस्त्र-अलंकार आदि की सुन्दर व्यवस्था की, परन्तु मलया को उसमें कोई आनन्द नहीं आ रहा था ।

एक दिन बलसार ने पूछा-``हे सुन्दरी ! तेरा नाम क्या हैं ?''

मलया बोली-``मेरा नाम मलयासुन्दरी है ।''

बलसार समझ गया कि यह भले ही अपने कुल को छिपा रही है, परन्तु इसका नाम व रुप ही बता रहा है कि यह किसी उच्च कुल की स्त्री है । कुछ दिनों की यात्रा के बाद बलसार सार्थवाह सागर तिलक शहर के तट पर पहुंच गया । सागरतिलक नगर उसकी जन्मभूमि थी और यही नगर उसके व्यापार का मुख्य केन्द्र था ।

सागरतिलक शहर में उसका भव्य महल था । अनेक प्रकार की भौतिक सुख सामग्रियों से युक्त वह महल दर्शकों के मन को मोहित कर लेता था । बलसार इसी महल में रहता था, उसकी एक **'प्रियसुन्दरी'** नाम की पत्नी भी

थी, परन्तु मलया के रुप और यौवन के आगे वह उसे तुच्छ लग रही थी ।

बलसार सार्थवाह ने नगर में प्रवेश किया । उसकी पत्नी ने उसका अभिवादन किया और समुद्र यात्रा की कुशलता पूछी । बलसार ने अपनी यात्रा के अनुभव सुनाए, किन्तु मलया की बात उसने गुप्त रखी । उसने मलया को गुप्त रुप से अन्य खण्ड में छीपा दी, क्योंकि यदि यह बात नगर में फैल जाय तो उसे अपनी अपकीर्ति का भय था । उसकी प्रिया प्रियसुन्दरी को भी ईर्ष्या होनी स्वाभाविक थी ।

मलयासुन्दरी को अलग खण्ड में रखकर उसे खुश करने के लिए बलसार ने बहुत से प्रयत्न किए । उसने मलया को अनेक प्रलोभन दिए । हर प्रकार की सुख-सुविधाएं दीं । परन्तु मलया अपने व्रत के रक्षण में दृढ निश्चयी थी, उसने बलसार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया ।

एक दिन कामांध बना बलसार मलया के खण्ड में जा पहुंचा और बोला-`हे सुन्दरी ! तू मेरी एक इच्छा को स्वीकार कर मैं तेरा जीवन भर के लिए गुलाम बन जाऊंगा और तेरी हर आज्ञा का पालन करुंगा । मेरी इस समस्त संपत्ति की तू स्वामिनी बनेगी ।''

मोह का यह कैसा विचित्र नाटक है । व्यक्ति जब मोहांध बन जाता है तो उसके विवेक चक्षु पर आवरण आ जाता हैं । वह इस नाशवंत और मलमूत्र से भरे शरीर के संग में दिव्य सुख की कल्पना कर बैठता है । उसकी प्राप्ति में अपूर्व सुख मानता है और उसकी अप्राप्ति में अत्यन्त निराश बन जाता है ।

मलयासुन्दरी रोष में आकर बोली-``अरे दुष्ट ! तू यहां से चला जा । क्यों व्यर्थ में अपने कुल को कलंकित करने जा रहा है ? मैं तेरा मुंह देखना नहीं चाहती । तूं मेरे शरीर के टुकडे-टुकड़े भी कर देगा, तो भी मैं अपने शील को खंडित नहीं करुंगी ।''

स्त्री के लिए शील ही महान् सम्पत्ति है । इसीलिए हर सती स्त्री अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपने शील का रक्षण करती है । ऐसी शीलवती नारियों का उज्ज्वल चरित्र इतिहास के पृष्टों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित होता है और हजारों वर्षों तक उनके चरित्र का आलंबन लेकर हजारों सन्नारियां अपने शील का रक्षण करती हैं ।

मलया के प्रत्युत्तर को सुनकर बलसार आग बबूला हो गया । उसने पुनः मलया से उसके पुत्र को छीन लिया । मलया को पुत्र अपहरण से अपार

दु:ख हुआ । वह बच्चा अब दो मास का हो चुका था, अतः मलया को पुत्र-रक्षा से शील रक्षा का प्रश्न अधिक सता रहा था ।

बलसार ने वह पुत्र ले जाकर अपनी पत्नी प्रियसुन्दरी को दे दिया । प्रियसुन्दरी के कोई संतान नहीं थी । अतः बलसार ने कहा-``हे प्रिये ! आज मैं उद्यान में भ्रमण के लिए गया था, वहीं मुझे इस पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है । प्रभु की कृपा हुई जो नि:संतान को संतान मिल गई है, अतः तू इसे अपना ही पुत्र मानकर इसका पालन पोषण कर । मैं इस पुत्र का नाम **``बल''** रखता हूँ ।''

प्रियसुन्दरी तेजस्वी पुत्र को प्राप्त कर खुशी से नाच उठी । धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा । बलसार सार्थवाह को व्यापार के लिए अन्यत्र विदेश यात्रा हेतु जाना था अतः उसने वाहन आदि तैयार करवाए । मलयासुन्दरी को भी गुप्त रुप से वाहन में चढ़ाने की व्यवस्था कर दी । प्रयाण की भेरियाँ बज उठी और एक दिन बलसार ने सागरतिलक नगर से प्रयाण कर दिया । मलयासुन्दरी अत्यन्त ही चिंतातुर थी । उसे अपने जीवन से भी शील अधिक प्यारा था । वह **'नमस्कार महामन्त्र'** के जाप और ध्यान में ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगी ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

१६. संयोग-वियोग

समुद्र की यात्रा लम्बी थी । सार्थवाह का अपना एक निजी वाहन भी था, जिसमें वह सवार होकर यात्रा कर रहा था । उस खण्ड के एक भाग में मलया को खुश करने के लिए लीलावती नाम की दासी नियुक्त कर दी गई थी । लीलावती मलया को समझाने के लिए बहुत प्रयत्न करती थी । वह एक चतुर दासी थी । मलया को बलसार के अधीन करने के लिए उसने एक से एक बढ़कर युक्तियों का प्रयोग किया, परन्तु सती मलया हर बार उसके फंदे से निकलती रही । अन्त में लीलावती भी थककर चूर हो गई ।

उसने बलसार को कहा-``हे स्वामी ! लोहे को पिघलाना आसान है परन्तु इस मलया के हृदय को पिघलाना अत्यन्त कठिन है ।''

बलसार यह सुनकर दंग रह गया । दो चार दिनों के बाद वह पुनः मलया के खण्ड में जा पहुंचा । उसने यह दृढ़ संकल्प किया कि वह किसी भी हालत में मलया को आज अपनी बना कर ही रहेगा ।

खण्ड में प्रवेश करते ही उसने मलया के सुन्दर मुख की ओर देखा और कहा-``हे सुन्दरी ! यदि तू मेरी बन जाय तो तुझे तेरा पुत्र भी प्राप्त हो जाएगा । इसके अतिरिक्त इतनी अधिक धन सम्पत्ति...।''

मलया ने उसे फटकारते हुए कहा-``हे दुष्ट ! तू व्यर्थ ही रेती में से तैल निकालने की चेष्टा क्यों कर रहा है ? मुझे मेरा पुत्र अपने प्राणों से भी प्यारा है, परन्तु शील से अधिक नहीं । मैं अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपने शील का रक्षण करुंगी ।''

यह सुनकर बलसार का कामावेश, क्रोधावेश में बदल गया । वह किसी भी प्रकार से मलया को भयंकर कष्ट में डालना चाहता था । वाहन आगे बढ़ रहे थे । पवन भी सानुकूल बह रहा था । कुछ ही दिनों के बाद बलसार सार्थवाह बर्बरकुल के किनारे पहुंच गया ।

बलसार ने बर्बरकुल के रंगरेज सरदार को बुलाकर मलयासुन्दरी को बेच दी । वह सरदार मलयासुन्दरी को उठाकर अपने घर ले आया ।

मलया के सुन्दर रुप को देखकर वह अत्यन्त कामातुर हो गया । उसने मलया से काम की प्रार्थना की, परन्तु मलया ने उसका भी तिरस्कार कर दिया । मलया के तिरस्कार से क्रुद्ध होकर उस रंगरेज सरदार ने मलया के शरीर में सुइयां चुभा-चुभा कर बहुत-सा खून निकाल लिया । इस प्रकार लगातार सुइयों के चुभाने से मलया अत्यन्त दु:खी हो गई ।

वह सोचने लगी-``अहो ! कहां वैभवयुक्त मेरा भूतकाल और कहां भयंकर वेदनाग्रस्त मेरा वर्तमान काल ?''

इतने भयंकर कष्ट आने पर भी मलया लेश भी विचलित नहीं हुई । आए हुए दु:खों को समतापूर्वक सहन करती हुई वह नमस्कार महामन्त्र के स्मरण में अपना समय बीताने लगी । शरीर से रक्त निकालने पर मलया की काया बिल्कुल शिथिल हो गई और वह बेहोश पड़ी रही । एक दिन मलया मांस के पिंड की भांति बेहोश होकर धरती पर पड़ी हुई थी । अचानक आकाश में उड़ने वाले भारण्ड पक्षी की नजर उसकी ओर गिरी । भारण्ड पक्षी बहुत ही शक्तिशाली तथा पुष्टकायी जीव होते हैं । वे विशालकाय हाथी को भी उठाकर आकाश में उड़ सकते हैं ।

मलया के देह को मांस का पिंड समझ कर वह भारण्ड पक्षी धरती पर उतरा और एक ही झपट में मलया के देह को अपनी चोंच में उठा कर आकाश

में उड़ गया। वह एक विराट् समुद्र के ऊपर से जा रहा था। तभी अचानक ही एक दूसरा भारण्ड पक्षी सामने से आया, वह उस भारण्ड पक्षी पर टूट पड़ा। दोनों भारण्ड पक्षी परस्पर झगड़ने लगे और इस झगड़े में मलयासुन्दरी नीचे गिर पड़ी।

चारों ओर समुद्र था। उस समुद्र में एक विशाल मत्स्यहस्ती अपने शिकार की शोध में आगे बढ़ रहा था। अचानक भाग्ययोग से मलयासुन्दरी उस मत्स्यहाथी की पीठ पर जा गिरी। मलयासुन्दरी जब गिरी, तब वह बेहोश अवस्था में थी, किन्तु समुद्र की शीतल लहरियों से क्षण भर में ही उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। उसने देखा कि चारों ओर विशाल समुद्र है और वह एक मत्स्य की पीठ पर बैठी हुई है, अतः जीवन की आशा रखना व्यर्थ है। एक क्षण में ही उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। ज्योंहि यह मत्स्य जल में डूबकी लगाएगा। मेरे इस जीवन का अन्त आ जायेगा। **'मैं मृत्यु के अत्यन्त निकट हूँ अतः मुझे अन्तिम आराधना कर लेनी चाहिए।'** ऐसा निश्चय कर उसने सागारिक अनशन स्वीकार किया और वह जोर से नमस्कार महामन्त्र का रटन करने लगी।

नमस्कार महामन्त्र की वह ध्वनि उस मत्स्यहस्ती के कान में गिरी और उसने मलया की ओर देखा। मलया को देखते ही वह समुद्र-तट की ओर तेजी से आगे बढ़ा। मलया को लेशमात्र भी कष्ट न हो, इसके लिए वह बार-बार पीछे मुड़ कर अपनी पीठ पर बैठी मलया को देखता जा रहा था और सुरक्षित रुप से आगे बढ़ रहा था। यह दृश्य देखकर मलया विचार में पड़ गयी।

अपने शील की रक्षा के लिए मौत के मुंह में प्रवेश करने के बाद भी क्या मैं बच जाऊंगी ? यह जलहस्ती मेरे ऊपर दया कैसे कर रहा है ? क्या अभी भी मुझे कर्म के कटु विपाक भोगने बाकी हैं ? न मालूम कब यह मत्स्य समुद्र में डूबकी लगा देगा और मैं मर जाऊंगी ?' आदि प्रश्न उसके मन को बार-बार सता रहे थे।

इस समुद्र यात्रा में मलया को किसी प्रकार की तकलीफ नही हुई। समुद्र के शीतल जल की लहरियों से उसका शरीर भीग गया था। उसका चित्त शांत हो गया। वह मत्स्य सागर तिलक नगर के तट की दिशा में आगे बढ़ता जा रहा था।

सारगतिलक के पराक्रमी राजा का नाम था **कंदर्प**। वह प्रतिदिन समुद्र

तट पर घूमने जाता था ।

सूर्योदय हुए आधा प्रहर बीत चुका था । महाराजा कंदर्प अपने राज-सेवकों के साथ समुद्र तट पर टहलने के लिए आए हुए थे । अचानक एक राजसेवक की नजर समुद्र की ओर गई और वह बोला-``अरे ! देखो तो सही, वह कौन आ रहा है ? एक विशाल हस्तीमत्स्य एक मानवी को पीठ पर बिठाये अपनी ओर आ रहा है ।'' वहां पर उपस्थित सभी लोगों ने यह दृश्य देखा । सभी आश्चर्य चकित हो गए ।

थोड़ी ही देर में वह मत्स्य समुद्र तट के पास आ गया । सभी राज-सेवक विचार में पड़ गये कि एक मांसभक्षी जलचर अपने शिकार को अपनी पीठ पर बिठा कर क्यों ला रहा है ? समुद्र तट पर आकर उस जलहस्ती ने मलया को समुद्र के किनारे उतार दी । मलया को समुद्र किनारे सुरक्षित छोड़ कर वह हस्तीमत्स्य पुनः समुद्र में चला गया । आगे बढ़ते हुए वह पुनः पुनः मलया के चेहरे की ओर देख रहा था । थोड़ी ही देर बाद वह मत्स्य समुद्र में अदृश्य हो गया ।

महाराजा तथा सेवकों ने मलया को समुद्र किनारे पड़ी हुई देखी तो उनका हृदय दया से भर आया । वे मलया के पास पहुंचे ।

राजा ने कहा-``हे सुन्दरी ! तू कौन है ? यह मत्स्य तुझे यहां कहां से लेकर आया है ?'' परन्तु मलया मौन रही ।

राजा ने पुनः कहा-``हे सुन्दरी ! तुझे घबराने की आवश्यकता नहीं है । यह सागरतिलक नगर है और मै यहां का राजा कंदर्प हूँ ।''

यह सुनकर मलया कुछ खुश हो हुई ।

उसने सोचा-`इसी नगर में सार्थवाह के घर मेरा पुत्र है, अतः अवश्य ही मेरे पुत्र के-दर्शन होंगे । यह राजा तो मेरे पिता और श्वसुर का वैरी है, अतः इसे सत्य परिचय देना मेरे लिए हितकर नहीं है ।' इतना सोचकर वह पुनः मौन रही ।

उसी समय एक राजसेवक बोला-``स्वामीनाथ ! इसके शरीर पर घाव लगे हुए हैं और समुद्र यात्रा से इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं लगता है, अतः यह कुछ बोल नहीं पा रहीं है । अतः सर्वप्रथम इसके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना जरुरी है ।''

महाराजा को उसकी बात जंच गई । उन्होंने तुरन्त अपने नौकरों को पालखी लाने का आदेश दिया । महाराजा की आज्ञा स्वीकार कर दो नौकर तुरन्त पालखी लेने के लिए राजमहल में चले गये और थोड़ी ही देर में एक सुंदर पालखी लेकर आ गये । इधर राजा के आग्रहपूर्वक पूछने पर मलया ने अपना नाम बतलाया, किन्तु अन्य परिचय नहीं दिया ।

महाराजा की आज्ञा से मलयासुन्दरी को एक सुन्दर पालखी में बिठाया गया और उसे राजमहल की ओर ले जाया गया । राजमहल के एक खण्ड में मलया के आवास की व्यवस्था कर दी गई । संरोहणी आदि औषधियों के प्रयोग से उसके शरीर पर लगे हुए घाव नष्ट हो गए । महाराजा कंदर्प उसकी अनुकूलता का पूरा ख्याल रखते थे । परन्तु इस प्रकार की अनुकूलता में मलयासुन्दरी को भावी संकट की आशंका थी । वह नमस्कार-महामंत्र का अधिकाधिक जाप कर, प्रभु से अपने शील रक्षण की याचना करती रहती थी । इस प्रकार राजमहल में मलयासुन्दरी ने समय व्यतीत किया ।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मलयासुन्दरी एक दिन अपने खण्ड में बैठी हुई थी तभी अचानक महाराजा द्वारा प्रेषित दासी ने मलया के खण्ड में प्रवेश किया ।

मलया को नमस्कार कर वह बोली-``हे सुन्दरी ! आज महाराजा की तुम्हारे ऊपर बड़ी भारी कृपा हुई है, यदि तुम महाराजा की प्रिया बनना स्वीकार करोगी तो वे तुम्हें पट्टरानी के पद पर आसीन कर देंगे, चारों ओर तुम्हारा मान...।''

परन्तु मलया ने उसे बीच में ही टोकते हुए कहा-``परस्त्री की ओर नजर डालने वाले उस राजा को धिक्कार हो ।''

दासी ने कहा-``हे देवी ! ऐसा अवसर क्यों खो रही हो ?''

मलया ने कहा-``राजा का काम तो प्रजा की रक्षा करना है, ऐसा कार्य उसके लिए लज्जास्पद है ।''

मलयासुन्दरी और दासी की बहुत देर तक चर्चा चली परन्तु मलया ने उसके हर प्रलोभन को ठुकरा दिया । दासी समझ गई कि इस वज्र हृदया नारी को बदलना मेरे वश की बात नहीं है । दासी ने सब घटना महाराजा को बतला दी ।

महाराजा ने अन्य कर्मचारियों के माध्यम से और साम-दाम-दण्ड भेद की नीति से मलयासुन्दरी को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके

सब प्रयत्न निष्फल गए ।

मलयासुन्दरी सोचने लगी, ``मेरे रुप और यौवन को धिक्कार हो, जिसके कारण अनेक व्यक्तियों के ह्रदय में कामवासना जागृत होती है । मैं समुद्र में गिरी, परन्तु उस समुद्र ने भी मुझे स्थान नहीं दिया और मैं पुनः संकट में आ गई । यह दुष्ट राजा कामांध बना हुआ है । यह शील खंडन के लिए बलात्कार भी कर सकता है, परन्तु मुझे हर हालत में अपने शील का रक्षण करना है ।''

एक दिन महाराजा कंदर्प ने स्वयं मलयासुन्दरी के खण्ड में प्रवेश किया और मलयासुन्दरी से काम की याचना करने लगा ।

मलया ने कहा-**``राजा तो न्यायप्रिय होते हैं और प्रजा का पितृवत् पालन करते हैं । न्याय का त्याग कर आप यदि दुष्कृत्य करोगे तो प्रजा किसकी शरण में जायेगी ? यदि राजा ही भक्षक बन जायेगा तो प्रजा की कैसी दुर्दशा होगी ? एक सती नारी के शील का खंडन कर आप अपनी कीर्ति को कलंकित क्यों करते हो ? किसी पतिव्रता स्त्री के शील का खंडन करना आसान बात नहीं है, यदि आप किसी प्रकार की अयोग्य चेष्टा करोगे तो आपके कुल का विनाश हो जाएगा ।''**

मलया ने राजा कंदर्प को समझाने के लिए अनथक प्रयत्न किया, परन्तु उसकी कामवासना मंद न हो पाई ।

जब व्यक्ति कामांध बन जाता है, तब वह अपने हित-अहित का विवेक खो बैठता है और इसके परिणाम स्वरुप उसे नाना प्रकार के दुःखों का भाजन बनना पड़ता है । आंख से भी काम का अंधापन अत्यन्त भयंकर है ।

मलयासुन्दरी से पराजित होकर, इस बार तो महाराजा उसके खंड से बाहर निकल गया, किन्तु उसकी वासना की आज्ञा शांत नहीं हो पाई ।

राजा ने सोचा, ``शायद धीरे धीरे उसका रोष शांत हो जायेगा ।''

एक दिन महाराजा कंदर्प राजमहल के गवाक्ष में बैठा नगर के दृश्य को देख रहा था कि अचानक ही एक तोता उड़ता हुआ वहां आ पहुंचा । उसके मुंह में एक आम का फल था । फल का वजन अधिक होने से वह तोता उस फल को उठाने में समर्थ नहीं हो पा रहा था । अतः अचानक ही वह फल महाराजा के पास गिर गया महाराजा ने जब उस सुन्दर फल को देखा तो उसे आश्चर्य हुआ कि इस फाल्गुण मास में आम का फल कहां से ?

फिर उसने सोचा, ``छिन्नटंक पर्वत के गर्त में सदाबाहरी आम्र वृक्ष है, जो हर ऋतु में फल देते हैं । अतः शायद यह पोपट वहीं से फल लेकर आया हो और फल के भार को सहन न कर सकने के कारण ही यह फल यहां गिर पड़ा है ।''

ऐसा सोचकर राजा ने ख्याल किया कि इस फल का क्या करुँ, मैं खाऊं अथवा उस सुन्दरी को भेंट करुं ? आखिर यही निश्चय किया कि यह फल उस सुन्दरी को देना ही लाभकारी है । इस फल को खाकर शायद वह मेरे वश में हो जाए ।

ऐसा निर्णय कर राजा ने एक दासी के माध्यम से वह फल मलया के पास भेज दिया । और साथ ही एक कर्मचारी को आदेश दिया कि-मलयासुन्दरी को आज हर हालत में अन्तःपुर में भेज दिया जाये । दासी ने जाकर वह आम्रफल मलयासुन्दरी को भेंट कर दिया । आम्रफल को पाते ही उसका मन मयूर नाच उठा । उसने सोच लिया कि अब वह अपने शील का रक्षण आसानी से कर सकती है । दासी ने उसके प्रसन्न चेहरे को देखा और उसने जाकर राजा को यह बात कही । मलया की प्रसन्नता से राजा भी प्रसन्न हो गया और सोचने लगा, अब अवश्य ही वह सुन्दरी मेरे वश हो जायेगी ।''

जब कर्मचारी मलया को अन्तःपुर में चलने के लिए आग्रह करने लगा, तो मलयासुन्दरी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया । अन्तःपुर में अन्य महारानियों के लिए अलग अलग खण्ड थे । मलयासुन्दरी ने अपना स्थान ग्रहण किया । अन्तःपुर के चारों ओर जबरदस्त पहरा लगा हुआ था । उस कर्मचारी ने राजा को समाचार दिया कि मलयासुन्दरी स्वतः ही अन्तःपुर की ओर चल पडी हैं, यह सुनकर राजा के हर्ष का पार नहीं रहा । राजा रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा ।

मलया के पास महाबल द्वारा प्रदत्त एक गुटिका थी, जिसे आम्र रस में घिस कर, उसका तिलक करने से स्त्री, पुरुष के रुप में और पुरुष स्त्री के रुप में बदल सकता था, अतः मलया ने उस आम्र रस में गुटिका घिस डाली और फिर अपने मस्तक के ऊपर उसका तिलक कर लिया । मलयासुन्दरी तत्काल पुरुष के रुप में बदल हो गई ।

अन्तःपुर की स्त्रियों ने मलयासुन्दरी के दिव्य और तेजस्वी रुप को देखा तो वह सोचने लगी-``यह पुरुष कौन है ? देव है, विद्याधर है अथवा किन्नर हैं ?'' ``ओह ! इस पुरुष का रुप कितना तेजस्वी है ?'' इस प्रकार

विचार करती हुई अन्त:पुर की स्त्रियां काम विह्वल हो गई । रात्रि के प्रारम्भ के साथ ही महाराजा कंदर्प ने प्रवेश किया । मलयासुन्दरी के स्थान पर एक दिव्य रुप पुरुष को देखकर राजा हैरान रह गया ।

महाराजा ने तत्काल पहरेदार को बुलाया और पूछा-``वह सुन्दरी कहां है ?''

पहरेदार ने कहा-कृपानाथ ! थोड़ी देर पहले मैं उसे यहां छोड़ गया हूँ और तब से द्वार पर सावधान होकर पहरा दे रहा हूं ।''

राजा यह उत्तर सुन कर चकित रह गया । उसने अन्त:पुर में चारों और मलयासुन्दरी की खोज करवाई, परन्तु मलयासुन्दरी कहीं भी दिखाई न दी ।

अंत में महाराजा ने सोचा यह पुरुष ही वह स्त्री लगता है ।

राजा ने मलया से कहा-``तू कौन है ?''

मलयासुन्दरी ने कहा-``आप जैसा देख रहे हैं, मैं वैसा ही एक साधारण व्यक्ति हूँ ।''

राजा ने सोचा-``अवश्य उस मलयासुन्दरी ने ही अपना रुप बदल लिया लगता है, अत: राजा ने चोकीदार को बुला कर आदेश दिया कि इस दुष्ट पुरुष को पकड़ लो और जेल में डाल दो अन्यथा यह सारे अन्त:पुर को बिगाड़ देगा ।''

मलया नें सोचा-``चलो शील का रक्षण तो किसी प्रकार से हो गया, अब आगे की बात आगे देखी जाएगी ।''

पुरुष वेषधारी मलयासुन्दरी को एक भयंकर कैदखाने में बंद कर दिया गया ।

एक दिन राजा ने आकर पूछा-``तूंने किस प्रयोग से अपना पुरुष वेश बनाया है और किस प्रकार तूं अपने स्वाभाविक रुप में आएगी ?''

राजा के प्रश्नों को सुनकर मलया मौन रही । मलया के मौन ने महाराजा के क्रोध को प्रज्वलित कर दिया । राजा ने चोकीदार को आदेश किया कि इसे प्रतिदिन कोड़ों से पीटा जाय ।' चौकीदार अब मलया को प्रतिदिन कोड़ों से पीटने लगा । एक दिन चौकीदार के कोड़ों की मार से मलया बेहोश हो गई । होश में आने के बाद उसने निर्णय किया कि इस आपत्ति से छुटकारा पाना जरुरी है क्योंकि कोड़ों की मार असह्य बनती जा रही है । उसने भाग जाने का

निर्णय किया ।

एक रात मलया ने भाग जाने की योजना बना ली । मध्य रात्रि के समय वह जाग उठी । उसने देखा, `चौकीदार नींद ले रहा है और वातावरण अत्यन्त शान्त है ।' उसे भागने का यह अवसर बिल्कुल ठीक लगा । यह निर्णय कर चुपके से मलयासुन्दरी उस कैदखाने के द्वार को खोल कर बाहर निकल गई । सागरतिलक के मार्गों से वह पूर्णतया अपरिचित थी ।

उसने सोचा-``प्रातःकाल होते ही राजा के सैनिक आयेंगे और मुझे पकड़ कर नाना प्रकार की पीड़ा देंगे, अतः अब तो मर जाना ही श्रेयस्कर है ।''

उसने पुनः सोचा-``आत्महत्या पाप है, परन्तु क्या किया जाय ? यह कोड़ों की मार असह्य बनती जा रही है और जीना दुष्कर होता जा रहा है ।''

कुछ दूर जाने के बाद उसने एक छोटा सा कुंआ देखा, जहाँ उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया । उसने आकाश में टिमटिमाते तारों तथा आस-पास खड़े वृक्षों को संबोधित करते हुए कहा-``हे दुर्भाग्य देव ! तूने मेरे प्रियतम से वियोग करा कर मुझे आपत्ति के सागर में डाल दिया है, अपने शील के रक्षण के लिए मैंने बहुत कुछ सहन किया है, आज मेरी पीड़ा असह्य बन चुकी है, अतः मैं मृत्यु का आलिंगन करना चाहती हूँ । यदि तुम मेरे प्रियतम तक सन्देश पहुँचा सको तो इतना कहना कि दुःख से कायर बनी मलया ने अन्त में मरना स्वीकार किया, किन्तु तुम्हें सदैव याद रखा ।''

वह कुंए में कूदने के लिए तैयार हो गई और **``मुझे आगामी भव में महाबल की शरण हो'',** ऐसा कह कर कुंए में छलांग लगा दी । भाग्य योग्य से वह कुंआ अधिक गहरा नहीं था । उस कुंए के तल भाग में नदी की रेती पड़ी थी, अतः कुंए में गिरने पर उसे विशेष चोट नहीं लगी । गिरते ही वह कुछ समय के लिए बेहोश हो गई ।

मौत भी मुँह मांगे कहां मिलती है ? मलया को कहां पता था कि जिस स्थान पर वह आत्महत्या करना चाहती है, वहीं पर उसे अपने प्रियतम का मिलन हो जाएगा ।

★ महाबल जो मलया की शोध में अपने राजमहल से निकल चुका था, राजमहल का त्याग करने के बाद वह अनेक नगरों में घूमा, परन्तु कहीं भी उसे मलयासुन्दरी नहीं मिली । वह निरन्तर एक वर्ष तक मलया की शोध में घूमता रहा । उसने मलया की शोध के लिए बहुत प्रयत्न किए, इतने प्रयत्नों के

बाद भी उसे मलया नहीं मिल पाई ।

मलया की शोध में भटका हुआ महाबल, कल ही सागर तिलक नगर में आया था और एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था । मलयासुन्दरी राजा कंदर्प के अन्तःपुर से निकल कर उसी वृक्ष के पास **'महाबल' ! 'महाबल' !** पुकारती हुई गुजरी थी । महाबल ने उसकी आवाज पहिचान ली । तुरन्त ही वह उस कुंए की ओर भागा, परन्तु मलया तो उसके आने के पहले ही उस कुंए में छलांग लगा चुकी थी । महाबल भी उस कुंए के निकट जा पहुंचा और उसने भी उस कुंए में छलांग लगा दी । कुंए में घोर अंधकार था ।

होश में आई मलया बार-बार **''महाबल की शरण हो, महाबल की शरण हो''**, ऐसा उच्चारण कर रही थी । महाबल अपनी प्रिया की शब्द ध्वनि को पहिचान गया । उसने तत्काल उससे पूछा ''तुम कौन हो और यहां क्यों गिरी हो ?''

मलया ने अपने पतिदेव की आवाज पहिचान ली और बोली, 'हे प्रियतम ! कुछ भी पूछने से पहले मेरे भाल पर लगे हुए तिलक को अपने थूंक से मिटा दो ।' कुमार ने तत्काल अपने थूंक से मलया के तिलक को मिटा दिया, जिससे मलया के रुप का पुनः परिवर्तन हो गया । वह अपने मूल स्वरुप में आ गई ।

महाबल ने कहा-, ''यह तो अचानक बादल बिना वर्षा हुई है । मैं तेरी शोध में एक वर्ष से भटक रहा हूँ, परन्तु कहीं भी तेरे दर्शन नहीं हो पाये और आज बिना कल्पना के ही तूं प्राप्त हो गई ।''

अपने प्रियतम की प्राप्ति से मलया के आनन्द का पार नहीं था । परन्तु घोर अंधकार होने से अभी तक वे एक दूसरे का मुँह देख नहीं पाए थे । अचानक ही भाग्य का सितारा चमका और उस घोर अंधकार में चारों ओर प्रकाश फैलने लगा । कुमार ने प्रकाश की ओर देखा । कुमार को पता चला कि एक मणिधर सर्प तेजी से उनकी ओर आ रहा है ।

उस मणि के प्रकाश में मलया ने महाबल का चेहरा देखा और महाबल ने मलया का । दोनों के आनन्द का पार नहीं था ।

महाबल ने कहा-''प्रिये ! तुझ पर ऐसी कौनसी आपत्ति आ पड़ी, जिसके कारण तुझे इस कुँए में कूदना पड़ा । तूं इस शत्रु राजा के राज्य में कैसे आ गई ?

मलया ने वनवास से लेकर आज तक की सम्पूर्ण घटना महाबल को सुना दी ।

मलया के ऊपर आए घोर कष्टों को सुनकर महाबल बोला-``हे प्रिये ! धन्य है तूं, इतने भयंकर कष्टों में भी इतनी दृढ़ रही ।''

अंत में मलया ने महाबल से पूछा, `घर से निकलने के बाद आप यहां अचानक कैसे आ गए ?'

कुमार ने भी वर्ष भर में हुई घटनाएं मलया को कह दी ।

कुमार ने पुनः पूछा-``अपना पुत्ररत्न कहाँ है ?''

मलया ने कहा-``इसी सागरतिलक नगर में होना चाहिए, क्योंकि बलसार सार्थवाह, कुमार को यहीं छोड़ कर समुद्र यात्रार्थ गया था ।

कुमार ने मलया को ढ़ाढ़स बंधाते हुए कहा-``अब विपत्ति के बादल दूर हो गए हैं, इस कुंए से निकलने के बाद हम पुत्ररत्न की शोध करेंगे और उसे प्राप्त कर स्वदेश लौट जाएंगे ।''

प्रिया और प्रियतम का मधुर वार्तालाप चल रहा था तभी वह सर्प अचानक अदृश्य हो गया। कुंए में पुनः अंधकार छा गया । महाबलकुमार सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा ।

★ धीरे-धीरे रात्रि का अन्तिम प्रहर व्यतीत हुआ । चौकीदार ने अन्दर जाकर देखा तो वह पुरुष वहां नहीं था, वह घबराया और भागा । राजा के पास जाकर बोला-``स्वामी नाथ ! वह पुरुष तो कैदखाने में नहीं है, शायद कहीं भाग गया है ।''

राजा गुस्से में आकर बोला-``तुम क्या कर रहे थे ?''

चौकीदार घबराया और हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया । राजा ने तत्काल गुप्तचर पुरुषों को मलयासुन्दरी की शोध करने के लिए आदेश दिया । प्रातःकाल के प्रकाश में एक गुप्तचर को मलया के पदचिन्ह मिल गये । उसने महाराजा को भी साथ चलने का आमन्त्रण दिया । आठ-दस व्यक्तियों के साथ महाराजा मलया के पद-चिन्हानुसार आगे बढ़ते गए, जो उस कुंए के पास आकर रुक गये ।

ज्योंहि महाराजा ने उस कुँए में दृष्टि डाली, महाराजा के आश्चर्य का पार नहीं रहा । महाराजा समझ गए कि इस स्त्री ने अपना मूल रुप प्रगट कर दिया है, अतः यह अन्य पुरुष इसका पति ही होना चाहिये । महाबल के

तेजस्वी दिव्य रुप को देखकर महाराजा सोचने लगे-``ऐसे तेजस्वी पुरुष को छोड़ यह स्त्री मुझसे प्रेम कैसे कर सकती है ?''

परन्तु मुझे किसी भी प्रकार से इस सुन्दरी को प्राप्त करना है, अतः इसको बाहर निकालने के लिए युक्ति से काम लेना चाहिए ।

महाराजा ने तुरन्त दो टोकरियां मंगवाई और उन्हें कुँए में डलवा कर बोला-, `हे कुमार ! और हे सुन्दरी ! मैं तुम्हें इस कुँए से बाहर निकाल देता हूं, फिर तुम निर्भय होकर होकर कहीं भी जा सकोंगे ।'

मलया ने कुमार से कहा-``यही वह दुष्ट राजा है, यह अत्यन्त कामी है, इसका वचन विश्वसनीय नहीं है ।''

कुमार ने कहा-``प्रिये ! इस कुँए में से निकलने का अन्य कोई मार्ग नहीं है, यदि हम दोनों एक बार इस कुँए से बाहर निकल जाय, तो फिर सब ठीक हो जाएगा, तुझे घबराने की आवश्यकता नहीं है । इतना कह कर एक टोकरी में कुमार और दूसरी टोकरी में मलया जा बैठी ।

राजसेवक दोनों टोकरियों को ऊपर खींचने लगे, मलया की टोकरी को जल्दी-जल्दी खींचा जा रहा था । ज्योंहि वह किनारे पर आई उसे निकाल दिया गया और महाबल की टोकरी जो अभी कुँए में ही थी, उसे बीच में ही काट दिया गया महाबल पुनः कुँए में गिर पडा ।

यह देखकर मलयासुन्दरी भी उस कुँए में गिरने के लिए तैयार हो गई, किन्तु राजा ने उसे पकड़ लीया और उसे रथ में बिठा कर अपने राजमहल में ले आया । उसे एक सुन्दर तथा भव्य आवास खण्ड दिया । कामी कंदर्प ने मलया को खुश करने के लिए मिष्टान्न के थाल, सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण भिजवाए, किन्तु मलया ने उन सबका तिरस्कार कर दिया और **जब तक प्रियतम की प्राप्ति न हो, तब तक कुछ भी आहार ग्रहण नही करने की प्रतिज्ञा ले ली ।**

१७. पाप की सजा

मलया अपने आवास खण्ड में रुदन कर रही थी, वह सोचती है-`मेरा कैसा दुर्भाग्य ? पति का संयोग हुआ और पुनः वियोग हो गया । अब मेरे प्रियतम उस कुँए से कैसे बाहर निकलेंगे और उनसे पुनर्मिलन कैसे होगा ?'' इस प्रकार चिंता सागर में डूबी हुई शय्या पर आलोटती थी, परन्तु उसे क्षण भर भी निद्रा नहीं आ रही थी ।

अचानक एक विषैले सर्प ने मलया के खण्ड में प्रवेश किया । मलया के खण्ड में अन्धकार था । उस सर्प ने मलया के पैर में दंश दिया । सर्प दंश की तीव्र वेदना के कारण मलया के मुख से चीख निकल पडी, तुरन्त ही आसपास से चौकीदार आ गए । ज्योंहि उन्हें सर्प दंश का पता चला, उन्होंनें तुरन्त ही सर्प की शोध की और उसे मार डाला । एक राजसेवक ने दौड़कर महाराजा को समाचार दिए । महाराजा भी हत-प्रहत हो गए, वे तुरन्त दौड़ पड़े । सर्प का जहर मलया के शरीर में फैलता गया । मलया बेहोश हो गई ।

मलया के विष-अपहार के लिए कामी कंदर्प ने अनेक वैद्यों को बुलवाया । वे लोग अपनी-अपनी बुद्धि से भिन्न-भिन्न उपचार करने लगे, परन्तु कोई भी वैद्य मलया को विष-मुक्त नहीं कर पाया । अन्त में महाराजा अत्यन्त व्याकुल हो गये ।

राज-वैद्य ने कहा,-``राजन् ! लगता है इसे किसी भयंकर विषधर ने काटा है, अतः इसके प्राण ब्रह्म-रन्ध्र में चले गए हैं, उन्हें वापिस काया में लाने का सामर्थ्य हमारे पास नहीं है । हां ! यदि नगर में इस विद्या का कोई जानकर हो तो उद्घोषणा करा दे ।''

राजा को यह बात पसन्द आ गई । उसने नगर में घोषणा कराई **'राज भवन में मलयासुन्दरी को सर्प ने दंश लिया है, जो कोई व्यक्ति मलया को विष मुक्त करेगा, उसे महाराजा रणरंग हाथी, राजकन्या और एक देश, पुरस्कार के रुप में देंगे ।'**

महाराजा की आज्ञा से सम्पूर्ण नगर में पटह बजवा दिया गया । परन्तु कोई भी व्यक्ति उस पटह को ग्रहण करने में समर्थ नहीं था । ``बड़े बड़े राजवैद्य और तांत्रिक भी जिस काम को नहीं कर पाये, उस कार्य को हम क्या कर पाएंगे ?'' ऐसा सोचकर कोई भी व्यक्ति उस पटह को पकड़ नहीं रहा था । मध्याह्न तक किसी ने उस पटह को ग्रहण नहीं किया ।

थोड़े समय के बाद एक अज्ञात विदेशी व्यक्ति ने पटहवादक को कहा-**``पटह बंद करो, मैं उस कन्या को विष मुक्त करता हूँ ।''** तत्काल उस युवक को राजमहल में ले जाया गया । ज्योंहि उस युवक ने राज-खंड में प्रवेश किया । राजा चोंक उठा । ``अहो ! यह तो वही राजकुमार है, जिसको मैंने उस कुँए में देखा था । यह उस कुँए में से बाहर कैसे निकल आया ?''

महाराजा ने कहा-``तुम कौन हो ?''

युवक बोला-``राजन् ! मैं एक विदेशी यात्री हूँ । जिसको सर्प ने दंश लिया है, वह मेरी पत्नी है । आपके पटह की घोषणा सुनकर मैं आया हूँ, मुझे

अन्य उपहार की आवश्यकता नहीं है, यदि आप मुझे मेरी पत्नी सौंप दे, तो मैं अभी उसके जहर को उतार दूं।'' सुनकर राजा चिन्ता में पड़ गया।

उसी समय दुष्ट बुद्धिवाले जीवक मन्त्री ने कहा-``आपका शुभ नाम ?''

कुमार ने कहा-``सिद्ध पुरुष।''

``मलयासुन्दरी आपकी पत्नी है, उसका कोई प्रमाण ?'' मन्त्री ने पूछा।

``यदि वह सुन्दरी मुझे पति के रुप में स्वीकार न करे तो मैं अन्यत्र चला जाऊँगा'', कुमार ने प्रत्युत्तर दिया।

`एक बार उस सुन्दरी को जीवित तो करवा ले, फिर इसे किसी माया जाल में फँसा देंगे', ऐसा सोचकर राजा ने कहा-``हे सिद्ध पुरुष ! यदि तुम इस सुन्दरी को विष मुक्त करने के बाद मेरा एक काम कर दोगे तो मैं तुझे तेरी पत्नी दे दूंगा।''

राजा का आदेश पाकर कुमार ने मलया के खण्ड में प्रवेश किया और पानी का एक कटोरा मंगवाया। मंत्र-साधना में विघ्न न हो, इसके लिए उसने सब व्यक्तियों को बाहर निकलवा दिया और अन्दर से द्वार बन्द कर दिया। कुमार ने अपनी धोती में बंधी हुई एक मणि निकाली और उसे मंत्रित जल में डालकर उस जल का मलयासुन्दरी पर छंटकाव किया। जल के छंटकाव मात्र से मलयासुन्दरी धीरे-धीरे सचेत होने लगी और थोड़ी ही देर में उसने आंखें खोल दी। अपनी आंखों के सामने महाबलकुमार को देख मलया के आश्चर्य का पार न रहा।

वह बोल उठी-``स्वामीनाथ ! आप उस अंधकूप में से यहाँ कैसे आ गए ?''

मलया की जिज्ञासा जानकर कुमार ने कहा-``प्रिये ! दुष्ट राजा ने मेरी मंचिका की डोरी जब काट डाली तो मै पुनः उस कुँए में गिर पडा। मैं उस कुँए में चारों ओर दिवाल में मार्ग ढूंढने लगा। एक प्रहर के बाद वह मणिधर सर्प पुनः वहाँ आ गया। उसके प्रकास में मैंने वहाँ एक सुरंग देखी। मैंने सुरंग का वह पत्थर हटाया और वह सर्प उसी सुरंग में आगे बढ़ने लगा। एक पथ प्रदर्शक की भांति वह सर्प आगे बढ़ रहा था, मणि का प्रकाश होने से मार्ग संकड़ा होने पर भी मुझे विशेष कष्ट नहीं हुआ और मैं चलता ही गया। आगे जाकर मैंने देखा कि सुरंग का द्वार बंद है। मेरे पास मंत्र शक्ति होने से मैंने उस सर्प को अपने वश में कर लिया और उसके मस्तक पर रही मणि को अपने पास रख ली। सुरंग के द्वार के पास आकर मैंने जोर से एक धक्का मारा तो वह शिला हट गई। मैं उस सुरंग से बाहर निकल गया और फिर उस शिला से सुरंग के द्वार को पुनः ढंक दिया।

रात्रि का अंतिम प्रहर चल रहा था, मैंने देखा, ``चारों और शांति है।

फिर मुझे पता चला कि यह तो श्मशान भूमि है ।'' मैं गुप्त रुप से नगर में आ गया । मध्याह्न के समय मैंने यह पटह सुना और उसके अनुसार यहाँ आ गया ।

प्रियतम की यह बात सुनकर मलया के हर्ष का पार न रहा ।

वह सोचने लगी,-``इतनी आपत्ति आने पर भी भाग्योदय कुछ अनुकूल अवश्य है ।''

महाबल ने पूछा-``प्रिये ! तुझे सर्प का जहर कैसे चढ़ा ?''

मलया ने अपनी आप बीती सुना दी ।''

द्वार के पास बैठे महाराजा ने मलया की आवाज पहिचान ली । उसने द्वार खटखटाया । महाबल ने द्वार खोला । महाराजा ने खण्ड में प्रवेश किया और मलयासुन्दरी को जीवित देखा । राजा के हर्ष का पार न रहा ।

जीवक मंत्री ने कहा-`कल से इस सुन्दरी ने कुछ खाया नहीं है, अतः सर्वप्रथम इसे भोजन करा दिया जाय ।'' मलयासुन्दरी ने महाबल के साथ भोजन किया ।

महाबल ने महाराजा से प्रार्थना की-``आप मेरी पत्नी मुझे सौंप दो ।''

परन्तु यह बात महाराजा के लिए अत्यन्त कठिन थी ।

तभी जीवन मन्त्री बोल उठा-``आपने मलयासुन्दरी को जीवित किया है, इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं, किन्तु आपने महाराजा के एक कठिन कार्य को पूर्ण करने का वादा किया था अतः पहले महाराजा के उस कार्य को पूर्ण कर दो ।''

जीवक मंत्री और महाराजा की दुष्टता से संपूर्ण राज-सभा परिचित थी, अतः मंत्री की बात सुनकर सभी प्रजाजनों को अत्यन्त दुःख हुआ । सभी परस्पर महाराजा और महामंत्री की निन्दा करने लगे ।

महाबलकुमार ने कहा-, ``मैंने आपके कार्य को करने का वादा जरुर किया था, अतः आप मुझे अपना कार्य शीघ्र बताएं, किन्तु उस कार्य की समाप्ति के बाद मेरी पत्नी मुझे सौंप दोंगें न ?''

महाराजा ने कहा-,``कार्य करने के बाद तुम्हारी प्रिया तुम्हें अवश्य सौंप दी जाएगी ।''

कुमार ने कहा-,``तो कहिए ! मेरे योग्य क्या काम है ?''

महाराजा कन्दर्प ने कहा-,``हे कुमार ! मुझे वर्षों से असह्य सिर दर्द रहता है, बहुत उपचार किए, फिर भी मेरा दर्द कम नहीं हो रहा है । एक कुशल वैद्य ने मुझे उपचार बतलाया था कि यदि कोई बत्तीस लक्षण वाला पुरुष जलती चिता में प्रवेश करे और आपको उसकी राख प्राप्त हो जाय तो उस राख से

आपका रोग मिट सकता है अतः आप वह राख लाकर मुझे दे दो।''

महाराजा की इस दुष्टता भरी बात सुनकर प्रजा में कोलाहल फैल गया। **''एक अज्ञात पुरुष के साथ कैसा घोर अन्याय हो रहा है ? आज तक हमने राजा की इस बीमारी के बारे में सुना नहीं है। यह राजा उस कन्या में इतना आसक्त क्यों बना है ? लगता है, महाराजा का विनाश निकट होने से महाराजा की बुद्धि भष्ट हो गई है।''**

महाबल ने प्रजा को शांत करते हुए कहा-,''प्रिय प्रजाजनों ! महाराजा के आरोग्य की चिन्ता करना अपना परम कर्तव्य है। यदि एक की मृत्यु से महाराजा स्वस्थ हो जाते तो महाराजा को ठीक करना उचित है। मुझे लगता है कि इस सभा में से तो बत्तीस लक्षण वाला कोई युवक मरने के लिए तैयार नहीं होगा, अतः महाराजा के रोग निवारण के लिए मैं ही चिता में प्रवेश करना उचित समझूंगा। इस प्रकार महाराजा के रोग का निदान हो जाएगा।''

महाबल के इन वचनों को सुनकर महाराजा और जीवक मंत्री को छोड़कर सारी प्रजा स्तब्ध हो गई।

प्रजाजन सोचने लगे-''राजा कितना कामातुर बन गया है ? इसकी दुष्टता की कोई सीमा नहीं है।'' प्रजा में कोलाहल बढ़ रहा था।

जीवक मन्त्री ने कहा-''प्रिय प्रजाजनों ! एक सामान्य नागरिक की अपेक्षा महाराजा का जीवन अधिक मूल्यवान् है अतः यदि महाराजा के रोग का निदान हो जाए तो इसमें कोई अन्याय नहीं है।''

तभी महाबल ने मन्त्री को टोकते हुए कहा-''आप न्याय-अन्याय की बात छोड़ दे, जल्दी ही चिता तैयार करने का आदेश दे।''

महाराजा को महाबल की बात पसन्द आ गई।

महाबल ने श्मशान भूमि की ओर प्रयाण किया। साथ में महाराजा, महामन्त्री और प्रजाजन भी थे। महाबल ने अपना स्थान पसन्द किया और थोड़ी ही देर में वहाँ चन्दन की चिता तैयार कर दी गई। महाराजा मन ही मन बहुत खुश थे। मध्याह्न का समय हो चुका था। सभी प्रजाजन इस क्रूर दृश्य को देखकर हैरान हो रहे थे। महाबल चिता प्रवेश के लिए तैयार था। उसने महाराजा और प्रजाजनों का अभिवादन किया। प्रजाजनों की आंखों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी। सभी राजा की निन्दा कर रहे थे।

महाबल ने महामंत्र का स्मरण किया। उसने चिता में प्रवेश किया। प्रजा हाहाकार कर रही थी। थोड़ी ही देर में आग की लपटें आकाश को छूने लगी। दो तीन घन्टे तक वह चिंता जलती रही। महाराजा और जीवक ने भी

यह दृश्य प्रत्यक्ष देखा । **'अब तो मलयसुन्दरी मेरी हो जाएगी ।'** इस आशा से राजा अत्यन्त प्रसन्न था ।

दो तीन घण्टों के बाद चिता शांत हो गई । दु:खी हृदय से प्रजाजनों ने विदाई ली । मलया ने भी स्वामी के अग्नि प्रवेश की बात कर्णोपकर्ण सुनी । वह अत्यन्त व्याकुल थी । उसने सभी प्रकार के आहार का त्याग कर दिया । वह चिन्ता सागर में डूब गई । रात भर प्रजाजनों को नींद नहीं आई । दूसरे दिन प्रात:काल हुआ और एक युवक ने उसी सिद्ध पुरुष (महाबल) को सिर पर राख की टोकरी लेकर राजमहल की ओर जाते देखा ।

प्रजाजनों ने पूछा, ``हे कुमार ! तुम कैसे आ गये ?''

सिद्ध पुरुष ने कहा-``महाराजा के सिर दर्द की औषध लेकर आया हूं ।'' इतना कह कर महाबल राजमहल की ओर आगे बढ़ गया ।

कुमार ने महाराजा का अभिवादन किया । उसने राख की टोकरी राजा के सामने धर दी और बोला-``राजन् ! अब आप अपने सिर दर्द से सदा के लिए मुक्त बन सकोगे ।''

सिद्ध पुरुष को सामने देखकर राजा दंग रह गया । ``चिता में प्रवेश कर जल जाने के बाद यह कैसे आ गया ? शायद इसने छल तो नहीं किया ?'' यह सोचकर महाराजा ने पूछा-`क्या तुम अग्नि में जले नहीं ?'

कुमार ने झूठा जवाब दिया, ``हे राजन् ! चिता में प्रवेश करने पर तो मैं बिल्कुल जल गया था, लेकिन मेरी साधना के बल से वहां देवता उपस्थित हुए और उन्होंने मुझे पुन: जीवित किया है और मैं आपके लिए यह औषध लेकर आया हूँ ।'' राजा ने कहा-``तेरी पत्नी ने कल कुछ खाया नहीं है, अत: पहले उसे भोजन करा ले ।''

कुमार ने सोचा-``यह राजा अब भी मेरी प्रिया को सौपने में विलंब क्यों कर रहा है ?'' कुमार ने मलया के साथ भोजन किया ।

मलया ने पूछा-``प्रियतम ! आप अग्नि प्रवेश के बाद कैसे बच गए ?''

कुमार ने धीरे से कहा-``हे प्रिये ! चिता की रचना मेरे मन पसन्द स्थल पर होने से मैंने सुरंग वाला स्थान पसन्द किया था । सुरंग के द्वार पर शिला होने से किसी को उसका ख्याल नहीं आया । मैंने उसके चारों ओर चिता की रचना करवा दी । चिता प्रवेश करने के बाद जब आग लगाई गई तो सुरंग की वह शिला हटा कर मैं सुरंग में चला गया । रात भर सुरंग में रहा और प्रात: काल होने पर मैं राख की टोकरी लेकर आ गया ।''

मलयासुन्दरी महाबल की बुद्धि से अति प्रसन्न हुई ।

भोजन की समाप्ति के बाद महाबल पुनः राजा के पास आया और बोला-``मुझे अब अपनी प्रिया सौंप दो ।''

राजा को यह वचन अति कटु लग रहा था ।

उसने सोचा, `यह किसी युक्ति से बच गया लगता है ।' तभी महाराजा ने जीवक मंत्री की ओर दृष्टि डाली ।

जीवक मंत्री ने कहा, ``हे कुमार ! तुम्हारा साहस अपूर्व कोटि का है । मनुष्य के लिए अशक्य कार्यों को भी तुम शक्य बना सकते हो, आपको शायद पता होगा कि महाराजा को पित्त की बीमारी है, इस बीमारी के लिए आम्रफल ही औषध रुप है, अतः यदि पाप छन्नटंक पर्वत के गर्त में रहे सदा-फलदायी आम्रवृक्ष पर जाकर फल ले आओ तो महाराजा के पित्त की बीमारी मिट जाएगी, मुझे विश्वास है कि आप यह कार्य अवश्य करोगे और इस कार्य को करने के बाद महाराजा आपको अपनी प्रिया अवश्य सौंप देंगे ।''

महाबल ने महामंत्री की बात ध्यानपूर्वक सुनी । वह सोचने लगा-``यह दुष्ट मंत्री अवश्य ही मुझे मौत के मुँह में धकेलना चाहता है । इस कार्य को किए बिना यह दुष्ट मुझे अपनी प्रिया नहीं देगा और प्रिया की प्राप्ति बिना मेरा जीवन भी निरर्थक है, अतः किसी भी प्रकार से मुझे यह कार्य करना होगा ।''

इतना सोचकर कुमार ने कहा-``तुम्हारे इस काम को मैं कर दूँगा, उसके बाद तो...।''

जीवक मंत्री ने कहा-``आपकी प्रिया आपको सौंप दी जाएगी ।''

कुमार ने कहा-``मुझे वह पर्वत बताओ, जहां से कूदकर मुझे वह फल लाना है । कुमार की बात सुनकर महाराजा और महामंत्री बहुत खुश हो गए ।

`महामंत्री ने सिद्ध पुरुष को छन्नटंक पर्वत के गर्त में आए हुए सदाफलदायी आम्रवृक्ष फल लाने का काम सौंपा है', यह जानकर प्रजा में महाराजा के प्रति रोष फैल गया ।

``महाराजा का यह कैसा घोर अन्याय है ?'' यह दुष्ट राजा सिद्ध पुरुष की मृत्यु चाहता है । किसी भी प्रकार से उसे मार कर उसकी पत्नी को अपनी प्रिया बनाना चाहता है अतः इस दुष्ट राजा का ही नाश होगा, इस प्रकार प्रजाजन महाराजा के इस घृणित दुष्कार्य की निन्दा कर रहे थे ।

सिद्ध पुरुष छिन्नटंक पर्वत की ओर आगे बढ़ रहा था । पीछे-पीछे महाराजा, महामंत्री और प्रजाजन भी साथ में थे । सिद्ध पुरुष को बताने के लिए दो सिपाही भी छन्नटंक पर्वत पर चढ़ने लगे । पर्वत की चढ़ाई अत्यन्त विकट थी । मार्ग अत्यन्त ही दुर्गम था । थोड़े भी असावधान रहे तो मौत का भय

था । सिद्ध पुरुष नमस्कार महामंत्र का स्मरण करते हुए आगे बढ़ रहा था । उसके साथ आ रहे दोनों सैनिक थक कर चूर हो गये थे ।

एक प्रहर के बाद दोनों सैनिकों के साथ सिद्ध पुरुष पर्वत के शिखर पर चढ़ गया । अति दूर से प्रजाजनों ने उसको देखा ।

एक सिपाही ने कहा-``सिद्ध पुरुष ! वह देखो आम्रवृक्ष ! उस पर से तुम्हें कूदना है और वहाँ से आम्रफल लेकर पुनः नीचे कूदकर किसी विकट मार्ग से राजमहल में पहुंचना है ।''

सिद्ध पुरुष ने देखा, ``वह वृक्ष ४०० फुट गहरा है और इस प्रकार कूदना यह तो मौत को भेंटने के बराबर है । आम्रवृक्ष पर कूदने के बाद भी पुनः सुरक्षित रुप से लौटना अपने वश की बात नहीं है ।

सिद्ध पुरुष ने नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया और साहसकर नीचे कूद पड़ा । कुमांर के नीचे कूदने के बाद दोनों सिपाही धीरे-धीरे उस पर्वत से नीचे आ गये । उन्होंने महाराजा को कहा-``वह साहसी सिद्ध पुरुष पर्वत के शिखर से नीचे कूद पड़ा है ।''

इस समाचार से महाराजा और महामन्त्री अत्यन्त खुश हो गए । लेकिन सारी प्रजा में रोष फैल रहा था । सभी के हृदय में महाराजा के इस अन्याय के प्रति तिरस्कार फैल गया । महाराजा सोच रहे थे, `पति के मर जाने के बाद मलयासुन्दरी अवश्य मुझे पसन्द कर लेगी ।'

महाराजा अपने राजमहल में आ गया । प्रजाजन भी अपने अपने घर पहुंच गए । महाबल के पर्वत के शिखर पर से कूद पड़ने के समाचार से मलया को अत्यन्त दुःख हुआ । उसने आहार आदि का त्याग कर दिया । महाराजा और महामन्त्री ने इस आशा से, कि-``अब मलयासुन्दरी मिल जाएगी'' वह दिन व्यतीत किया । प्रजाजन अत्यन्त ही चिंतातुर और व्याकुल थे ।

दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ और सभी प्रजाजन राजसभा की ओर जाने लगे । सभी ने मिलकर राजा के इस घोर अन्याय का सामना करने का निर्णय लिया । महाराजा कंदर्प और महामंत्री जीवक ने अपना आसन ग्रहण किया । प्रजा भी अपने यथोचित स्थान पर बैठ गई । मंगल पाठकों के मधुर गीतों से राजसभा प्रारम्भ हुई । तभी द्वार के निकट बैठे लागों में कोलाहल मच गया । सभी लोग द्वार की ओर देखने लगे ।

लोग जय जय ध्वनि कर रहे थे । उन्होंने आम्रफल की टोकरी के साथ सिद्ध पुरुष को राजमहल की ओर आते हुए देखा । लोगों के आनन्द का पार नहीं था, **``अहो ! सिद्ध पुरुष कितना निर्भीक और साहसी है, जिसके**

साहस से मौत भी दूर भागती है ।''

थोड़ी ही देर बाद सिद्धपुरुष ने राजमहल में प्रवेश किया । लोग उसके शरीर को टकटकी नजर से देख रहे थे, शायद कहीं चोट तो नहीं लगी है न ?

सिद्ध पुरुष के देह पर किसी भी प्रकार का घाव दिखाई नहीं दे रहा था, वही मस्त और प्रसन्न चेहरा दिखाई दे रहा था । प्रजाजनों ने सिद्ध पुरुष को आगे बढ़ने का मार्ग दिया ।

'सिद्ध पुरुष की जय हो' की जय ध्वनि से पूरा वातावरण गुंज उठा । सिद्ध पुरुष महाराजा कंदर्प के निकट पहुंच गया और आम्रफल की टोकरी राजा के सामने रख दी ।

सिद्ध पुरुष को देखते ही राजा का अन्तःकरण जल उठा, उसका मुख-मंडल श्याम हो गया ।

महामंत्री ने कहा-``तुम सकुशल आ गये ?'' कुमार ने महामंत्री को कोई भी उत्तर दिए बिना उस आम्रफल के करंडे में से दो-तीन फल लेकर अपनी प्रिया को मिलने के लिए उसके खण्ड में चला गया ।

ज्योंहि मलया ने अपने प्रियतम महाबलकुमार को देखा, उसका देह हर्ष से रोमांचित हो उठा । उसने हृदय से प्रियतम का स्वागत किया ।

मलया ने पूछा-``प्रियतम ! उस भयंकर आपत्ति से आप कैसे बच गए ?''

महाबल ने कहा-``हे प्रिये ! पर्वत के शिखर से कूदने के पूर्व मैंने नमस्कार महामंत्र का ध्यान किया था और मैंने उच्च स्वर से कहा, **`यदि सन्मार्ग में रह कर कर मैंने शुभ कर्म का अर्जन किया हो तो मेरा साहस सफल हो ।''** इतना कह कर मैं उस गर्त में कूद पड़ा ।

बचने की कोई आशा नहीं थी । परन्तु एक व्यंतर ने मुझे अपने दोनों हाथों में ले लिया और वह मुझे उठाकर अपनी गुफा में ले गया ।

उसने कहा-``कुमार ! मौत के मुंह में जाने का साहस क्यों कर रहे हो ?''

मैंने सारी घटना सुना दी ।

व्यंतर ने कहा-``तुम मेरे उपकारी हो अतः मैं तुम्हारी सहायता करुंगा ।''

मैंने कहा-``मैं और उपकारी यह कैसे ?''

उसने कहा,-``आपको याद होगा, स्वर्ण पुरुष की साधना करते समय आपने एक योगीराज को उत्तर-साधक बनकर सहायता की थी । वह योगीराज मैं ही था । वहां से मरकर मैं व्यंतर निकाय का देव बना हूँ और इसी वृक्ष पर मेरा आवास है ।''

पूरी रात हमने वार्ता-विनोद में व्यतीत की । प्रातः होते ही वह व्यंतर

एक करंडा ले आया और उसमें आम्रफल भरकर मुझे दे दिये ।

उसने कहा-``मैं तुम्हें सुरक्षित रुप से राजा के पास पहुंचा दूंगा, और आवश्यकता पड़ने पर उस दुष्ट राजा को भी सीधा कर दूंगा । जब भी कोई काम आ पड़े, मुझे याद करना, मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा ।'' इतना कहकर वह देव मुझे उठा कर नगर के बाहर ले आया ।

उस देव ने कहा-,`मैं अदृश्य रुप से तुम्हारे साथ ही हूँ ।''

मलयासुन्दरी यह सब सुनकर दंग रह गई । वह अपने प्रियतम के साहस आदि गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगी ।

इधर महाराजा के सामने आम्रफल की टोकरी पड़ी हुई थी । उसमें से आवाज आ रही थी, ``राजा को खाऊँ या मन्त्री को खाऊँ !'' यह शब्द ध्वनि सुनकर राजा ने जीवक मन्त्री से कहा-``यह पुरुष वास्तव में सिद्ध पुरुष लगता है, जो इस प्रकार के दुष्कर कार्यों को भी आसानी से कर लेता है और हमारे ही नाश के लिए यह तंत्र-प्रयोग करके लाया है'', कहता हुआ राजा भयभीत हो उठा ।

हास्य तथा व्यंग के साथ मंत्री ने कहा-``धूल पड़े इसके तंत्र-प्रयोग में ।''

इतना कह कर जीवक मंत्री ने आम्रफल लेने के लिए उस करंडे में हाथ डाला । उसी समय उस करंडे में से भयंकर आग की लपटें निकल पड़ी और क्षणभर में जीवक मंत्री जलकर भस्मीभूत हो गया । उन आग की लपटों से वह सभा-मण्डप भी जलने लगा । तत्काल महाराजा ने सिद्ध पुरुष को बुलाने के लिए राजसेवक को भेजा । थोड़ी देर में सिद्ध-पुरुष वहाँ आ गया ।

सिद्ध पुरुष ने सोचा-``व्यंतर देव ने अवश्य कुछ चमत्कार दिखलाया लगता है ।''

राजा ने सिद्ध पुरुष से अग्नि शमन के लिए प्रार्थना की । सिद्ध पुरुष ने दया करके जल का छंटकाव कर आग शांत कर दी । अब उस करंडे के पास जाने की कोई भी हिम्मत नहीं कर रहा था ।

महामंत्री की मृत्यु से महाराजा को छोड़कर अन्य किसी को दु:ख नहीं था । किसी ने भी महामन्त्री की मृत्यु पर शोक नहीं किया । सिद्ध पुरुष ने करंडे का ढ़क्कण हटाया और उसमें से आम्रफल लेकर राजा को देने लगा । भयभीत राजा फल लेने में आनाकानी करने लगा । सिद्ध पुरुष ने वह फल एक दो अन्य व्यक्तियों को भी दिया । राजा ने जब देखा कि इस फल से अन्य किसी को नुकसान नहीं हो रहा है, तब उसने भी वह फल ले लिया ।

महाराजा ने महामन्त्री जीवक के पुत्र को महामन्त्री का पद दिया और सिद्ध पुरुष को कहा-``हे सिद्ध पुरुष ! इस प्रकार छल करके तूने मेरे महामंत्री

को खत्म क्यों किया ?

सिद्ध पुरुष ने कहा-``हे राजन् ! यह तो तुम्हारे अन्याय का बीजमात्र है, इसके कुफलों को तो तुम बाद में अनुभव करोगे ।''

``राजन् ! जो राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता है, उसकी हर आपत्ति का नाश होता है और उसे हर प्रकार की सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, अतः अब मुझे मेरी पत्नी सौंपकर न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करो ।''

सिद्ध पुरुष की बात में हां में हां मिलाते हुए सामन्तों ने भी कहा-``अब आप अपने वचन को मिथ्या न करो और इस सिद्ध पुरुष को कूपित मत करो ।''

सामन्तों की बात सुनकर मलयासुन्दरी में अनुरक्त बने राजा ने सोचा-``यह सिद्ध-पुरुष मंत्र-तंत्र आदि विद्याओं का ज्ञाता लगता है और उन विद्याओं से वह बाह्य कार्य तो आसानी से कर लेता है, अतः मैं उसको स्वदेह सम्बन्धी ऐसा कार्य सौंपू, जिसे वह कर न पाये । वह दुष्कर कार्य को न करने पर वह अपनी प्रिया की मांग भी कैसे कर सकेगा ?''

इतना सोचकर राजा ने कहा-``हे सिद्धपुरुष ! मैं तुम्हारी प्रिया तुम्हें अर्पित कर दूंगा । तुम एक समर्थ व्यक्ति हो, अतः मेरा एक कार्य और कर दो । मैं अपने नेत्रों से पीठ को छोड़कर शरीर के अन्य सब अंगों को देख पाता हूँ, अतः तुम ऐसा करो, जिससे मैं अपनी पीठ को भी देख सकूं ।''

राजा की इस मांग को सुनकर प्रजा में भी रोष बढ़ गया ।

सिद्ध पुरुष सोचने लगा `अहो ! यह दुष्टबुद्धि राजा किस प्रकार के क्षुद्र आदेश कर रहा है ? कोई भी व्यक्ति अपनी आंखों से अपनी पीठ को नहीं देख पाता है, फिर यह अपनी पीठ दर्शन का आग्रह क्यों कर रहा है ?' इतना सोचकर सिद्ध पुरुष ने कहा-`अपनी पीठ के दर्शन से तुम्हें कौनसी सिद्धि मिलने वाली है ?' इतना कहकर सिद्ध पुरुष ने देव का स्मरण किया और राजा के मस्तक को पकड़कर जोर से मोड़ने लगा । देव प्रभाव से राजा का मुँह पीठ की ओर मुड़ने लगा और इस प्रकार मोड़ने में राजा को भयंकर पीड़ा होने लगी । थोड़ी ही देर में राजा का मुँह पीठ की ओर हो गया ।

``हे राजन् ! अब तुम अपनी पीठ को देखते रहो और अपनी इच्छा को तृप्त करो'', सिद्ध पुरुष ने कहा ।

पीठ की ओर मुँह हो जाने से राजा की स्थिति बेढंगी हो गई । राजा की यह दुर्दशा देखकर प्रजाजन हास्य विनोद करने लगे और राजा के दुष्कृत्य की निन्दा करने लगे । राजा की इस दुर्दशा के समाचार अन्तः पुर की स्त्रियों को मिले । हा-हा कार करती हुई वे सब स्त्रियां राज-सभा में आ पहुंची और जोरों

से रुदन तथा विलाप करने लगी । राजा की वेदना बढ़ती जा रही थी । सभी स्त्रियां सिद्ध पुरुष के चरणों में गिर कर प्रार्थना करने लगी, ``हमारे स्वामी को पुनः यथावत् कर हमें जीवनदान दो । हे सिद्ध पुरुष ! हमारे ऊपर कृपा करो ! हमें पति भिक्षा दो ।''

``यदि नगर की समस्त प्रजा राजा की दुष्टता के इस फल को देखेगी तो शायद यह राजा अवश्य ही अपनी दुष्टता का त्याग कर देगा'', ऐसा सोचकर सिद्ध पुरुष ने कहा-``यदि राजा इसी हालत में पैदल चलकर नगर बाहर आए हुए आदिनाथ भगवान के दर्शनार्थ जाएं, तो उनके मुख को पुनः यथावत् कर सकता हूँ ।''

सिद्ध पुरुष की शर्त को सुनकर पहले तो राजा ने वहां जाने में आनाकानी की, परन्तु दूसरा कोई उपाय न होने से राजा ने वह शर्त स्वीकार की । राजा कंदर्प बड़ी कठिनाई से राजमहल में से बाहर निकला । उसे चलने में अत्यन्त कठिनाई होने लगी ।

पीठ की ओर मुंह करके गति करना कितना कठिन कार्य है ? परन्तु पराधीन बने राजा को इस प्रकार नगर में घूमना पड़ा । दुष्ट राजा की इस दुर्दशा को देखने के लिए चारों ओर भीड़ इकट्ठी हो गई । सभी प्रजाजन राजा को देखकर उसके दुष्कृत्य की निन्दा करने लगे । राजा कभी पत्थर से चोट खाता तो कभी नीचे गिर पड़ता । बहुत कठिनाइयों को पार कर राजा, नगर के बाहर के जिन मन्दिर में पहुँचा और उसने प्रभु के दर्शन किए । दर्शन के बाद राजा फिर धीरे-धीरे चलकर राजमहल में आया और सिद्ध पुरुष के पास बैठ गया और अपनी पूर्व अवस्था को पाने के लिए सिद्ध पुरुष से प्रार्थना करने लगा ।

सिद्ध पुरुष ने देव का स्मरण किया और महाराजा के मस्तक को पकड़ कर उसे जोर से मोड़ा, तत्काल महाराजा का मुँह पुनः सामने हो गया ।

पुनः सिद्ध पुरुष ने प्रार्थना की-``हे राजन् ! अब मुझे मेरी पत्नी सौंप दो ।'' सिद्ध पुरुष की इस मांग से राजा पुनः चिन्ता सागर में डूब गया । वह कुछ ऐसा उपाय सोचने लगा कि जिससे वह मलयासुन्दरी को पा सके ।

१८. मङ्गल-मिलन

महाराजा कुछ सोच रहे थे, तभी अचानक एक राजसेवक ने आकर समाचार दिये,-``हे राजन् ! अश्वशाला में आग लग गई है ।'' समाचार सुनते ही राजा खड़े हो गए और अश्वशाला की ओर आगे बढ़े । सिद्ध पुरुष भी साथ में था ।

राजा ने सिद्ध पुरुष से प्रार्थना की,-``हे सिद्ध पुरुष ! इस अश्वशाला

के साथ मेरा अश्वरत्न भी जल जाएगा, अतः तुम मेरे अश्वरत्न को निकाल दो।'' आग चारों ओर भड़क उठी थी, अग्नि-प्रवेश के बिना अश्वरत्न के पास जा नहीं सकते और अग्नि-प्रवेश का अर्थ था, मौत को आलिंगन करना।

उसने वचन दिया, 'मेरे अश्वरत्न को लाने के बाद तुम अपनी प्रिया को लेकर चले जाना।'

लोगों ने यह बात सुनी तो वे सोचने लगे-``यह दुष्ट राजा अभी भी अपने कदाग्रह का त्याग नहीं कर रहा है और एक सज्जन व्यक्ति को मौत के मुँह में धकेल रहा है। क्या इस प्रकार अग्नि-प्रवेश करवाना उचित है ?''

सिद्ध पुरुष ने सोचा-``अभी भी यह अपनी दुष्टता का त्याग नहीं कर रहा है।'' उसने उस व्यंतर का स्मरण किया और अग्नि में प्रवेश कर दिया।

लोगों में हाहाकार मच गया। परन्तु लोगों के आश्चर्य का पार नहीं रहा। जब उन्होंने देखा कि वह सिद्ध पुरुष सुरक्षित रुप से अश्वरत्न को लेकर आग से बाहर निकल आया है।

लोगों ने उसके दिव्य रुप और अलंकारों को देखा और आश्चर्य चकित हो गए।

सिद्ध पुरुष ने कहा-``यह जलती हुई अग्नि अत्यन्त चमत्कारी है, परम पवित्र है और सर्व इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। इसी अग्नि से मेरा यह दिव्य रुप हुआ है। इस अग्नि स्नान के कारण अब हम दोनों (अश्व तथा सिद्ध पुरुष) कभी बूढ़े नहीं होंगे। उसकी इस बात को सुनकर राजा तथा अनेक प्रजाजन भी अग्नि स्नान के लिए तैयार हो गए।

सिद्ध पुरुष ने कहा-``जल्दी मत करो, सब को बारी बारी से प्रवेश दिया जाएगा। सर्वप्रथम अग्नि प्रवेश के अधिकारी अपने महाराजा हैं, फिर महामंत्रीश्वर और फिर अन्य लोग। परन्तु थोड़ी देर मुझे इस अग्नि की पूजा करने दो।''

राजा अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। उसने अपने मंत्री के साथ अग्नि में प्रवेश किया। फिर अन्य प्रजाजन भी अग्नि प्रवेश के लिए जल्दी करने लगे।

सिद्ध पुरुष ने कहा,-``अभी रुको ! महाराजा और महामंत्री को वापस आने दो।''

लम्बी इन्तजारी के बाद भी जब महाराजा वापस नहीं लौटे तो लोगों ने पूछा-``महाराजा कब आयेंगे ?''

सिद्ध पुरुष ने कहा-``क्या अग्नि प्रवेश के बाद भी कोई वापस लौटा है ?''

लोगों ने पूछा-``तो फिर आप कैसे आए ?''

सिद्ध पुरुष ने कहा-``मेरे साथ तो देव का सानिध्य था ।''

लोगों ने सोचा-``इस सिद्ध पुरुष ने राजा से अपने वैर का बदला लिया है । महाराजा को दुष्टता का फल बराबर मिल गया है । अपने ही हाथों से उन्हें मौत मिल गई है ।''

थोड़ी देर के बाद वह अग्नि शान्त हो गई और प्रजा ने महाराजा और महामंत्री के जले हुए शरीर की कुछ अस्थियां देखीं । सिद्ध पुरुष की बुद्धि से प्रजा खुश हो गई ।

सामन्त तथा मंत्री सोचने लगे कि अपना राजा तो मर गया है और उसके कोई सन्तान भी नहीं है, अतः राजा किसे बनाया जायें ? सभी की एक ही आवाज थी कि इस सिद्ध पुरुष को अपना राजा बनाया जाय । एक मंत्री ने सिद्धपुरुष को राजा बनने के लिए आग्रह किया ।

सिद्धपुरुष ने राजा बनने से इन्कार कर दिया । प्रजाजनों का सिद्ध पुरुष के प्रति बहुत अधिक आग्रह था । अतः सिद्ध पुरुष ने प्रजा के आग्रह का स्वीकार किया और राजा बनने की स्वीकृति दे दी ।

शुभ दिन और शुभ मुहुर्त में सिद्ध पुरुष का राज्याभिषेक कर दिया । और उसका नाम सिद्धराज रख दिया । मलयासुन्दरी महारानी बन गई । सिद्धराज ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली । वह राज्य के सुदृढ़ संचालन की व्यवस्था करने लगा । उसके राज्य में प्रजा स्वर्गीय सुखों का अनुभव करने लगी ।

सिद्धराज ने प्रजा के हित की ओर पूरा पूरा ध्यान दिया । प्रजा के सुख-दुःख को वह अपना सुख-दुःख समझता था । एक दिन सिद्धराज अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था । उसी नगर का निवासी **`बलसार'** सार्थवाह देश-विदेश से बहुत-सा धन कमा कर आया था । नूतन राजा से वह अपरिचित था, अतः उसकी कृपा को पाने के लिए बहु-मूल्य उपहारों सहित वह महाराजा के सामने उपस्थित हुआ ।

बलसार ने सिद्धराज को नमस्कार किया, परन्तु ज्योंहि उसने मलया-सुन्दरी की और दृष्टि डाली, वह चौंक उठा, ``ओहो ! यह तो अब राजरानी बनी हुई है । यह अब मुझे मरवा देगी ।'' ऐसा सोचकर बलसार सार्थवाह वहां से जल्दी निकल जाने की तैयारी करने लगा ।

ज्योंहि बलसार सार्थवाह बाहर निकलने की तैयारी करने लगा, मलया-सुन्दरी ने अपने पति को बताया-``यह वही सार्थवाह है, जिसने अपने पुत्र को

छुपाया है ।'' सिद्धराज ने उसे तुरंत पकड़ा दिया ।

सिद्धराज ने बलसार को कैद कर लिया । वह जेल में पड़ा पड़ा सोचने लगा-``इस दुष्ट राजा से कैसे मुक्ति मिलेगी ?'' अन्त में उसे एक उपाय सुझ आया ।

उसने सोचा, ``चन्द्रावती के महाराजा वीरधवल और पृथ्वीस्थानपुर के महाराजा सुरपाल इस राजा के कट्टर शत्रु हैं । यदि मैं उपहार भेजकर उनको आमंत्रित कर लूं तो उनके आने पर यह राजा अवश्य ही पराजित हो जाएगा और मैं बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा ?''

ऐसा विचार कर बलसार सार्थवाह ने अपने एक विशेष दूत को तैयार किया और कहा-``महाराजा सुरपाल और वीरधवल को मेरा नमस्कार कह कर ये आठ लाख स्वर्ण मुद्रायें उन्हें सौंप देना और कहना कि आपका दास बलसार सार्थवाह आपत्ति में फंस गया है । सागर-तिलक के दुष्ट राजा ने उसे कैद कर दिया है, अतः आप उसकी सहायता के लिए सैन्य सहित पधारें । सार्थवाह को मुक्त करने पर वह आपको और भी कीमती वस्तुएँ भेंट करेगा !''

बलसार की आज्ञानुसार वह दूत चन्द्रावती नगरी की ओर चल पड़ा । भयंकर जंगल में राजा वीरधवल और सुरपाल से उसकी मुलाकात हुई । दूत ने सब परिस्थिति दोनों महाराजाओं को सुना दी ।

वीरधवल ने सुरपाल से कहा-``दुर्ग तिलक पर्वत के पल्लिपति के पास मलयासुन्दरी के समाचार सुनकर हम उसे लेने के लिये वहां गये । पल्लिपति को युद्ध में हरा दिया गया, परन्तु कहीं से भी मलयासुन्दरी अपने को नहीं मिली । व्यर्थ में अपने जन-धन की हानि हुई । इधर हम सागरतिलक नगर के निकट आ ही पहुँचे हैं, अतः यदि बलसार की सहायता करेगे तो अपने को धन भी मिलेगा और इस दुष्ट शत्रु का भी नाश हो जायेगा ।''

सुरपाल ने वीरधवल की हां में हां भर दी । तत्काल दोनों सेनाओं ने सागरतिलक की ओर प्रयाण किया और कुछ ही दिनों में उन्होंने सागरतिलक नगर को घेर लिया ।

दो महाराजाओं के विराट् सैन्य के आगमन से सागरतिलक की सारी प्रजा घबरा गई । प्रजा में हाहाकार मच गया, क्योंकि दोनों राजाओं की सेना ने नगर के चारों ओर अपना पड़ाव डाल दिया था ।

वीरधवल ने अपने एक विशेष दूत को तैयार का सिद्धराज की सभा में भेजा । राजसभा में जाकर दूत ने महाराजा को नमस्कार किया और अपने स्वामी का सन्देश सुनाते हुए कहने लगा कि पृथ्वीस्थानपुर के महाराजा सुरपाल और चन्द्रावती के महाराजा वीरधवल विशाल सेना के साथ यहाँ पधारे हुए हैं ।

उन्होंने कहलाया है-``आपने बलसार नामक निर्दोष सार्थवाह को कैद कर रखा है। वह सार्थवाह हमारा स्नेही है। अतः उस सार्थवाह को शीघ्र मुक्त कर दो और न्याय-नीति से अपना राज्य करो। यदि आप उस सार्थवाह को मुक्त नहीं करोगे तो आपको उसका बुरा परिणाम भुगतना पड़ेगा।''

दूत के इस सन्देश को सुनकर राजा सिद्धराज (महाबल) मन ही मन अत्यन्त खुश हो गया। अरे ! यह तो घर बैठे गंगा आ गई। पिता और श्वसुर दोनों का यहीं पर मिलन हो जायेगा।

परन्तु सिद्धराज (महाबल) ने झूठे कोप का आडंबर करते हुए कहा- ``हे दूत ! तुम्हारे दो राजा एक साथ लडने के लिए आये हैं तो क्या वे इतने कायर हैं ? वे अकेले मुझसे लड़ नहीं सकते ?

क्या केसरी सिंह हाथियों के समूह से घबराता है ? आकाश में एक ही सूर्य चमकता है, क्या वह असंख्य तारों से अधिक प्रकाश नहीं देता ? क्या एक अपराधी को शिक्षा देना राजा का कर्तव्य नहीं हैं ? उनके सिर पर सफेद बाल आ गये हैं, फिर भी एक अपराधी का पक्ष लेते हुए उन्हें शर्म नहीं आती ? इतना होने पर भी यदि तुम्हारे स्वामी को युद्ध का ही शौक है तो वे युद्ध के मैदान में आ जाय।

दूत शीघ्र ही वहां से चल पडा। सिद्धराज ने भी युद्ध की भेरी बजवा दी। सिद्धराज ने यह सब घटना मलयासुन्दरी को कह दी। पितृ-श्वसुर मिलन से उसके हृदय में अपूर्व आनन्द छा गया। सिद्धराज अपनी सेना के साथ युद्ध के मैदान में आ गया। चारों ओर युद्ध का वातावरण छाया हुआ था। दोनों ओर की सेनाएं युद्ध में आमने-सामने खड़ी थी। युद्ध की भेरियां बज उठीं और भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

गदाधारी गदाधारियों के साथ, मुद्गर वाले मुद्गर वालों के साथ और रथ वाले रथ वालों के साथ परस्पर लड़ने लगे। सिद्धराज की सेना परास्त होने लगी। तो सिद्धराज स्वयं रणरंग हाथी पर आरुढ़ होकर युद्ध के मैदान में आ गया। सुरपाल और वीरधवल भी अपने बलवान हाथियों पर बैठकर युद्ध के मैदान में आ पहुंचे।

सिद्धराज ने व्यन्तर का स्मरण किया। व्यन्तर के प्रभाव से वीरधवल और सुरपाल के सभी तीर बीच में ही गायब होने लगे और सिद्धराज का प्रत्येक तीर अपने निशान को बींधने लगा।

इस प्रकार यह युद्ध लम्बे समय तक चला। वीरधवल और सुरपाल थक कर चूर चूर हो गये और वे दोनों निस्तेज हो गये।

जब सिद्धराज ने वीरधवल और सुरपाल को अत्यन्त थका हुआ देखा, तब उसने देव को याद कर एक बाण के अग्रभाग में अपने पिता को लिखा गया पत्र लगा दिया। वह तीर सुरपाल राजा को तीन प्रदक्षिणा देकर उनके पैरों में जा गिरा। तीर को इस प्रकार प्रदक्षिणा देते हुये देखकर सुरपाल को आश्चर्य हुआ। उसने वह पत्र उठाया और वीरधवल महाराजा को वह पत्र पढ़कर सुनाया। उस पत्र में कुमार ने लिखा था-

``स्वस्ति श्री महाराजाधिराज सुरपाल पिता श्री की पवित्र सेवा में तथा अत्यन्त पराक्रमी श्वसुर श्री वीरधवल महाराजा की पवित्र सेवा में महाबल का प्रणाम ज्ञात हो। आपकी परम कृपा से ही मैं इस राज्य का अधिपति बन पाया हूँ। आपके मनोरंजन के लिए ही मैंने अपने भुजाबल का प्रदर्शन किया है। आपको हुए कष्ट के लिए क्षमा चाहता हूँ।''

आपके दर्शनों का प्यासा, महाबल।

पत्र सुनते ही वीरधवल महाराजा भी हर्ष से रोमांचित हो उठे। फिर दोनों महाराजा महाबल के सामने आए। पिता व श्वसुर को आते हुए देखकर कुमार भी अपने हाथी से नीचे उतर गया और पिता तथा श्वसुर के चरणों में गिर पड़ा। महाबल को देखकर महाराजा सुरपाल और वीरधवल अत्यन्त खुश हो गए। सिद्धराज ने दोनों महाराजाओं के नगर-प्रवेश के स्वागत की घोषणा करवा दी। इस प्रकार एक दूसरे के मिलन को देख प्रजा आश्चर्य चकित हो गई। बड़ी धूमधाम के साथ दोनों महाराजाओं का नगर प्रवेश हुआ।

महाबल ने सबको प्रेमपूर्वक भोजन कराया। उसके बाद सब बैठक खण्ड में आ गए। मलयासुन्दरी भी वहाँ आ पहुंची। अपनी पुत्र-वधु को देख सुरपाल की आंखें पश्चाताप से अश्रुभीनी हो गई।

पिता और श्वसुर के पूछने पर मलया ने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया। मलया के ऊपर आए हुए घोर उपसर्गों को सुनकर महाराजा सुरपाल बोले-``हे पुत्र वधु! तेरे पर आए इन सब दुःखों का मूल मैं स्वयं ही हूँ''

परन्तु मलया ने कहा-``हे पिताजी! इसमें आपका कोई दोष नहीं हैं, **इस संसार में आत्मा स्वकृत कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख का अनुभव करती है, अतः मुझ पर आए उपसर्गों में मूल कारण मेरे ही पूर्वकृत अशुभ-कर्मों का उदय है। अतः इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। अपने ऊपर आनेवाले उपसर्गों में अन्य आत्माएँ तो निमित्त मात्र होती हैं, मूल कारण तो स्वकृत कर्म ही है।''**

महाबल को पूछने पर उसने भी अपनी संपूर्ण घटना सुना दी।

महाराजा सुरपाल और वीरधवल, महाबल के विचित्र चरित्र, पराक्रम, बुद्धिमत्ता और शौर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे।

फिर सुरपाल ने पूछा-``बेटा ! तेरा पुत्र कहाँ है ?''

उसी समय महाबल की आज्ञा से बलसार सार्थवाह को पकड़ कर लाया गाया और उससे पुत्र के विषय में पूछा गया। उसने कहा-``आप मुझे अभयदान देने की कृपा करें, मैं आपका पुत्र आपको सौंप दूँगा।''

महाराजा ने उसे अभयदान दिया और मुक्त किया। उसने तत्काल गुप्त स्थान में छिपाये हुए उस पुत्ररत्न को लाकर महाबल को सौंप दिया।

राजा ने पूछा-``इसका क्या नाम रखा है ?'' उसने कहा-``बल''। तभी उस बालक ने सौ दिनार की एक थैली उठा दी।

बालक के इस पराक्रम को देखकर सुरपाल ने कहा-``इसका नाम **शतबल** रखना चाहिये।''

सभी ने वह नाम स्वीकार किया। शतबल के तेजस्वी मुख मण्डल को देखकर राजा सुरपाल के हृदय में आनन्द का सागर उछलने लगा। सिद्धराज (महाबल) ने समस्त प्रजा को महाराजा वीरधवल और सुरपाल का विस्तार सहित परिचय दिया। जिसे सुनकर सारी प्रजा करतल ध्वनि करने लगी।

बालक को प्राप्त कर मलया भी अत्यन्त प्रसन्न हो गई और उस दुष्ट सार्थवाह को कैद से मुक्त कर दिया।

सुरपाल ने कहा-``उस नैमित्तिक का वचन सत्य हुआ। एक वर्ष के बाद ही मलयासुन्दरी की हमें प्राप्ति हुई है। सिद्धराज ने अपनी भुजा से अर्जित राज्य पिता को समर्पित कर दिया। इस प्रकार आनन्द और कल्लोल के साथ सभी के दिन बीतने लगे।

१९. अतीत का अवलोकन

महाबल कुटुम्ब-सहित शाही वैभव को भोग रहा था। तभी एक दिन उद्यानपाल ने आकर समाचार दिये,**``भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य चन्द्रयश केवली अपने विशाल परिवार के साथ उद्यान में पधारे हैं।''**

गुरु भगवन्त का आगमन सुनकर महाराजा वीरधवल, महाराजा सुरपाल और महाबल बड़े खुश हुए। वे बड़े उत्साह के साथ केवली भगवन्त की देशना श्रवण करने के लिए उद्यान में गये और गुरु भगवन्त को नमस्कार कर यथोचित स्थान पर बैठ गये। केवली भगवन्त ने संसार से पार उतरने के लिए धर्म देशना दी। देशना श्रवण कर अनेक भव्यात्माएँ वैराग्यवासित बनी।

देशना समाप्ति के बाद सुरपाल राजा ने पूछा-``हे प्रभु ! सागर में गिरी हुई मलयासुन्दरी उस मत्स्य के द्वारा तट पर कैसे आ गई ?''

केवली भगवन्त ने कहा-``हे राजन् ! वह हस्तीमत्स्य पूर्व भव में मलयासुन्दरी की धावमाता वेगवती थी । मरते समय दुर्ध्यान हो जाने से वह हस्तीमत्स्य बनी । भारंड पक्षी के मुख से जब मलया उस मत्स्य के ऊपर गिरी और उसने जोर से नमस्कार महामन्त्र पढा । उसके श्रवण से उस मत्स्य को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । उसने मलया को देखा और उसे पहिचान लिया । आपत्ति में घिरी हुई मलया को बचाने के लिए ही वह मत्स्य मलया को समुद्र किनारे पर ले आया । जाति-स्मरण ज्ञान होने के बाद वह निष्पाप आहार करने लगा । इस प्रकार निष्पाप्र जीवन जीने के कारण वह मत्स्य मरने के बाद सद्गति प्राप्त करेगा ।

राजा ने फिर प्रश्न किया-``हे भगवन्त ! पूर्वभव में मलयासुन्दरी और महाबल ने ऐसे कौनसे पाप किये थे जिनकी वजह से उन्हें यहाँ इस प्रकार के भयंकर कष्ट सहन करने पड़े ?''

गुरु भगवन्त ने कहा-``यह जानने के लिये तुम्हें इनके पूर्वभव का ज्ञान प्राप्त करना होगा । पूर्वभव में किये दुष्कृत्यों के कारण ही महाबल और मलया-सुन्दरी को इतने भयंकर कष्ट सहन करने पड़े । उनका पूर्व भव सुनो ।''

`पृथ्वीस्थानपुर नगर में प्रियमित्र नाम का एक समृद्ध वणिक् रहता था । उसके रुद्रा, भद्रा और प्रियसुन्दरी नाम की तीन पत्नियां थी । लेकिन उनके कोई सन्तान नहीं थी । रुद्रा और भद्रा में परस्पर अत्यधिक प्रेम था । परन्तु प्रियमित्र का अधिक स्नेह प्रियसुन्दरी पर था । इसलिये रुद्रा और भद्रा को प्रियसुन्दरी से अत्यधिक ईर्ष्या रहती थी ।

प्रियमित्र का `मदन' नामक एक घनिष्ट मित्र था, जो अत्यन्त ही कामुक था । एक दिन उसने प्रियसुन्दरी को देख लिया और उस पर मोहित हो गया । उसने एकांत में प्रियसुन्दरी से काम की प्रार्थना की । प्रियमित्र को इस बात का पता चल गया । उसने क्रोध में आकर मदन के भाइयों को सब बात कह दी, जिससे नगरजनों ने उसे नगर से बाहर निकाल दिया ।

नगर से निकल कर मदन जंगल में चला गया । दो दिन से उसे कुछ भी खाने को नहीं मिला था । निरन्तर चलते रहने से वह थक भी गया था । उसे बड़े जोर की भूख लगी थी । तीसरे दिन उसने एक ग्वाले को देखा, जो पास में ही गायें चरा रहा था । उसने ग्वाले से दूध माँगा । ग्वाले को दया आ गई, उसने अपनी गाय को दोह कर उसे पीने के लिए दूध दिया ।

दूध पीने के लिए वह एक वृक्ष के नीचे आ बैठा !

उसने सोचा, ``मैं दो दिन से भूखा हूँ और मुझे यह दूध मिला है, इस समय यदि कोई अतिथि मिल जाय और उसे पिला कर मैं इसे पीऊँ, तो मेरा जन्म सफल हो जाये ।''

वह ऐसा सोच ही रहा था, तभी मास-क्षमण के एक तपस्वी मुनि उसे विहार करते हुए दिखाई दिये । उसने मुनिराज से गोचरी के लिए प्रार्थना की और भक्ति सहित दूध बोहराया । फिर शेष बचे हुए दूध को स्वयंने पीया । दूध पीने के बाद वह नदी तट पर गया । अचानक उसका पैर नदी में फिसल गया । जिससे वह डूब गया । मुनि को दान देने से वह मरने के बाद विजय राजा का पुत्र कंदर्प बना, जो अपने पिता की मृत्यु के बाद राजा बना ।

प्रियमित्र अपनी प्रिया, प्रियसुन्दरी के साथ विलासपूर्वक दिन बीता रहा था । एक दिन वह अपनी प्रिया के साथ धनंजय मन्दिर के दर्शनार्थ गया । मार्ग में उसने एक मुनि को उसी पथ पर आते हुए देखा ।

``यह सिर-मुंडित मुनि सामने कहाँ से आ गया ? यह तो अप-शकुन हो गया, अब हमारी यात्रा निष्फल जायेगी'', इस प्रकार बोलती हुई प्रियसुन्दरी ने रथ को रुकवा कर मुनि के ऊपर उपसर्ग करना चालू किया ।

मुझ पर अब उपसर्ग आने वाला है-``ऐसी आशंका से मुनि कायोत्सर्ग (ध्यान) में लीन हो गये ।''

प्रियसुन्दरी कहने लगी-``अरे ! यह तो बड़ा कपटी और अहंकारी है । हमारे रुकने से यह भी रुक गया है । अतः उसने अपने सेवक को आदेश दिया कि पास के ईटों के भट्टे में से एक जलती हुई लकड़ी लाकर इस मुनि को स्पर्श कराओ, जिससे अपना अपशकुन दूर हो जाएगा ।''

सेवक ने कहा-``मेरे पैरों में पादुकाएं नहीं हैं, अतः मैं इन कांटों में नहीं जा सकूँगा । इसे छोड़कर हमें आगे बढ़ जाना चाहिये ।'' सेवक की इस बात को सुनकर प्रियमित्र ने अपने किसी अन्य सेवक को आदेश दिया कि इस दुष्ट नौकर को बांध कर वट वृक्ष पर उल्टा लटका दो ।

फिर प्रियसुन्दरी ने रथ से नीचे उतर कर मुनि को अत्यन्त कटु वचन बोले और पत्थर आदि फैंक कर मुनि की ताड़ना तर्जना की । उसने मुनि का रजोहरण खींच लिया । फिर वे धनंजय यक्ष के मन्दिर में चले गये ।

यक्ष की पूजा आदि से जब वे निवृत्त हुए, तब जिनधर्म में अनुरक्त एक दासी ने कहा-``**हे स्वामी ! क्षमा के धारक एक मुनि के ऊपर उपसर्ग कर आज आपने बहुत बड़ा पाप किया है । मुनियों पर उपसर्ग करने से तो**

इहलोक और परलोक में भयंकर दुःख भोगने पड़ते हैं ।''

लघुकर्मी होने से प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी को अपनी गलती का अहसास हो गया । उन्हें अपने दुष्कृत्य पर अत्यंत ही पश्चाताप हुआ । फिर वे स्व-दुष्कृत्य की निंदा करते हुये मुनिश्री के पास गये । मुनिराज अभी तक उसी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे । रथ से नीचे उतर कर मुनि को अपना रजोहरण प्रदान कर वे मुनि के चरणों में गिर पड़े और अपने दुष्कृत्य के लिए घोर पश्चाताप करने लगे । दोनों ने मुनिश्री से बार-बार क्षमायाचना की ।

कायोत्सर्ग पूर्ण कर मुनिश्री ने धर्मलाभ कहा और धर्मोपदेश दिया । जिसे सुनकर प्रियसुन्दरी ने सम्यक्त्व पूर्वक देशविरित धर्म स्वीकार किया । प्रियमित्र ने मुनि भगवंत को गोचरी के लिए आमन्त्रण दिया । गोचरी का समय होने पर मुनिराज गोचरी के लिए नगर में पधारे । पुण्य योग से वे प्रियमित्र के घर भी गये । दोनों ने हर्षोल्लास पूर्वक मुनिश्री को गोचरी बोहराई । फिर वे अत्यन्त आनन्द पूर्वक जिनधर्म का पालन करते हुए अपने दिन व्यतीत करने लगे ।

एक दिन रुद्रा और भद्रा के बीच कलह हो गया । वे दोनों सोचने लगी **``हमारे इस जीवन को धिक्कार है, क्योंकि हमारा यह कलह कभी मिटता ही नहीं है ।''** ऐसा सोचकर उन दोनों ने कुँए में गिर कर आत्म-हत्या कर ली । रुद्रा मर कर जयपुर के महाराजा चन्द्रपाल की पुत्री कनकवती बनी, जिसका विवाह महाराजा वीरधवल के साथ हुआ । भद्रा मर कर व्यंतरी बनी । पृथ्वीतल पर भ्रमण करती हुई, एक दिन वह व्यंतरी पृथ्वीस्थानपुर आई । प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी को देखकर उसे पूर्वभव का वैर याद आ गया । उसने रोष में आकर निद्राधीन प्रियमित्र और प्रियसुन्दरी के ऊपर मकान की दिवाल गिरा दी । जिससे दोनों मृत्युलोक को प्राप्त हुए ।

हे सुरपाल नरेश ! वही प्रियमित्र मर कर तुम्हारा पुत्र महाबल बना है और वही प्रियसुन्दरी मर कर वीरधवल की पुत्री मलयासुन्दरी बनी है । रुद्रा और भद्रा का मलयासुन्दरी और महाबल के प्रति पूर्वभव में जो वैर था, उस वैर को याद करके ही व्यंतरी, महाबलकुमार को मारने का प्रयत्न करती थी, परन्तु पुण्य के प्रभाव से वह कुमार को नहीं मार सकी । मलयासुन्दरी द्वारा महाबल को दिए हार का अपहरण भी उसी व्यंतरी ने किया था और पूर्वभव का स्नेह होने के कारण उसी ने वह हार कनकवती को दिया था ।

इसी बीच महाराजा वीरधवल बोल उठे, ``क्या स्वयंवर के पूर्व भी महाबल मलयासुन्दरी को मिला था ?'' इस प्रश्न से महाबल और मलयासुन्दरी को कुछ लज्जा आ गई । त्रिकाल केवली भगवन्त ने वीरधवल के सन्देह

निवारणार्थ वह घटना विस्तार से कह दी । गत भव में मलयासुन्दरी के प्रति वैर-भाव होने के कारण ही कनकवती ने मलया के प्रति झूठा आरोप लगाकर उसे आपत्ति में डाली था । कनकवती के इस दुश्चरित्र को सुनकर सभी लोग कनकवती को धिक्कारने लगे ।

प्रियमित्र का वह सेवक जिस पर उसने कोप किया था, उसी वृक्ष के नीचे आया । उस व्यंतर को पूर्वभव का वचन याद आ गया और जब कनकवती का नाक कट जाने से महाबल ने हास्य किया था, तब उसी भूत ने महाबल को उल्टा बांध दिया था ।

पूर्वभव में एक दिन रुद्रा ने लोभवश अपने पति के मुद्रा रत्न की चोरी की थी, सुन्दरदास ने यह सब देख लिया था । प्रियमित्र जब मुद्रारत्न को खोजने लगा, तो सुन्दरदास ने रुद्रा द्वारा की गई चोरी बतला दी । तब क्रोध में आकर वह रुद्रा कहने लगी, ``हे नकटे ! हे वैरी ! झूठ क्यों बोल रहे हो ?'' इस प्रकार का ठपका सुनकर सुन्दरदास मौन रहा । साम-दाम-दंड और भेद नीति से प्रियमित्र ने रुद्रा के पास से मुद्रारत्न ग्रहण कर लिया । सुन्दरदास को दुर्वचन कहने से ही इस भव में कनकवती का नाक काटा गया ।

मदन को प्रियसुन्दरी के प्रति राग होने के कारण इस भव में राजा कंदर्प मलया के प्रति अत्यन्त रागी बना हुआ था । मलयासुन्दरी और महाबल ने पूर्वभव में मुनि को दान दिया था और जिनधर्म का पालन किया था, उसी के फलस्वरुप उन्हें उत्तम कुल आदि की प्राप्ति हुई । पूर्वभव में मुनि पर पत्थर का प्रहार और कटु वचन बोलने से ही इस जन्म में मलया को स्वजनादि का वियोग सहन करना पड़ा और मुनि के रजोहरण का अपहरण करने से उसे पुत्र-वियोग सहन करना पड़ा ।

अन्त में केवली भगवन्त ने कहा, ``हे राजन् ! महाबल और मलयासुन्दरी ने पूर्वभव में जिस मुनि पर उपसर्ग किए थे और जिस मुनि की भक्ति की थी, वह मैं स्वयं ही हूँ ।'' यह सुनकर महाबल और मलयासुन्दरी पुनः गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े ।

तभी वीरधवल ने पूछा-``हे भगवन्त ! क्या इन दोनों पर कनकवती भविष्य में भी कोई उपसर्ग करेगी ?''

गुरु भगवन्त ने कहा-``हे राजन् ! कुमार ने व्यंतरी पर जब हस्त प्रहार किया, तब वह व्यंतरी तो शांत हो गई और अपने स्थान पर चली गई, परन्तु वह कनकवती इसी नगर में एक बार फिर महाबल पर अन्तिम उपसर्ग करेगी, जिसके परिणाम-स्वरुप कनकवती और व्यंतरी अनन्त संसारी होगी ।''

इस प्रकार गुरु भगवन्त के मुख से महाबल और मलयासुन्दरी के पूर्वभव के चरित्र को सुनकर अनेक आत्माएं प्रतिबुद्ध हुई । महाबल और मलयासुन्दरी ने भी श्रावकोचित व्रत स्वीकार किए और प्रतिदिन मुनिभक्ति करने का अभिग्रह धारण किया ।

२०. बन्धन से मुक्ति

गुरुदेव की वैराग्य-वासित देशना सुनकर महाराजा सुरपाल तथा वीरधवल का हृदय भव-बन्धन की मुक्ति के लिए उत्सुक हो गया । उन्होंने उसी समय कहा-**``हे भगवन् ! राज्य के कार्य भार से निवृत्त होकर हम शीघ्र ही आपके पास दीक्षा अंगीकार करेंगे ।''**

राजमहल में आकर महाराजा सुरपाल पृथ्वीस्थानपुर का अपना राज्य महाबल को सौंपकर दीक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार हो गए । महाराजा वीरधवल ने भी चन्द्रावती का राज्य अपने पुत्र मलयकेतु को सौंप दिया । इस प्रकार दोनों राजाओं ने धूमधाम पूर्वक चन्द्रयश केवली भगवंत के पास दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा अंगीकार कर वे दोनों महर्षि त्याग-तप और संयम की उत्कृष्ट साधना करने लगे । अन्त में वे दोनों महर्षि अपना आयुष्य पूर्ण करके देव बने, वहां आयुष्य पूर्ण कर वे महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म पाकर तथा दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

महाबलकुमार ने सागरतिलक के राज्य पर शतबल का राज्याभिषेक करा दिया और सेनापति को राज्य का कार्य भार सौंपकर वह स्वयं परिवार सहित पृथ्वीस्थानपुर आ गया । नगरवासियों ने महाबल कुमार का भव्य स्वागत किया । महाबल ने न्याय और नीति से राज्य का संचालन किया । दिव्य सुखों को भोगते हुए महाबल कुमार को एक अन्य पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । महाबल ने उसका नाम **सहस्त्रबल** रखा ।

धीरे धीरे वे दोनों पुत्र बड़े होने लगे । यौवन अवस्था प्राप्त करने के बाद उन दोनों का रुपवती राज कन्याओं के साथ लग्न हुआ । महाबल ने व्यंतर की सहायता से अपने राज्य का बहुत विस्तार किया और संपूर्ण पृथ्वी को जिन-मन्दिरों से अलंकृत कर दी । वर्षों तक राज्य करने के बाद महाबल ने अपने दोनों पुत्रों को अलग-अलग राज्य सौंप दिया । शतबल सागरतिलक का राजा बना और सहस्त्रबल पृथ्वीस्थानपुर का अधिपति बना ।

वैराग्य रंग में रंगे हुए महाबल और मलयासुन्दरी ने गुरु भगवन्त के

पास भव-बन्धन से मुक्त कराने वाली भागवती दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा ग्रहण कर महाबल और मलयासुन्दरी अच्छी तरह से संयम का पालन करने लगे । महाव्रतों का विशुद्ध पालन करते हुए महाबल मुनि ने आगमों का गहन अध्ययन किया और वे एक गीतार्थ महा मुनि बने । गुरु भगवन्त ने उन्हें कर्म निर्जरा के लिए एकाकी-विहार की अनुमति दी ।

अपने परम पवित्र जीवन से पृथ्वी को पावन करते हुए एक दिन संध्या समय महाबल मुनि सागरतिलक के उद्यान में पधारे । महाबल मुनि के शुभ आगमन के स्थान ही उद्यानपाल तुरंत महाराजा शतबल के पास आया और हाथ जोड़कर बोला-``हे राजन् ! अपने निर्मल चारित्र से भूतल को पावन करते हुए आपके पिताश्री एकाकी विहार कर नगर के बाहर उद्यान में पधारे हैं ।''

पिता के आगमन के समाचार को सुनकर शतबल राजा अत्यन्त आनन्दित हुआ । उसने उद्यानपाल को योग्य पारितोषिक दिया ।

फिर उसने सोचा-``अब संध्या का समय हो चुका है, अतः प्रातःकाल होते ही अत्यन्त ऋद्धि के साथ पिता मुनि के दर्शन करुंगा ।'' ऐसा विचार कर उसने सिंहासन से उठकर भावपूर्वक पिता मुनि को वन्दन किया ।

प्रातःकाल की प्रतीक्षा करता हुआ राजा शतबल अपनी शय्या पर सो गया । महाबल मुनि उद्यान में कायोत्सर्ग में लीन हो गये । उधर दुष्टा कनकवती भी जगह जगह घूमती, अनेक कष्टों को सहन करती हुई, कुछ ही दिन पूर्व उस नगरी में आई हुई थी । संध्या समय उद्यान की ओर जाते समय उसने महाबल मुनि को देख लिया । मुनि को देखते ही उसके हृदय में वैर की अग्नि प्रज्वलित हो उठी । उसने सोचा-``यह राजा सुरपाल का पुत्र महाबल लगता है और यह मेरे समस्त दुश्चरित्र को जानता है । प्रातः काल होते ही यह मेरे दुश्चरित्र को प्रगट कर देगा, जिससे मुझे इस नगर में रहना कठिन हो जाएगा, अतः ऐसा कार्य करुं जिससे यह जीवित न रहे ।''

ऐसा विचार कर वह दुष्टा अपने घर चली गई और रात्रि के समय उस उद्यान में पहुंच गई। नगर के द्वार बंद हो चुके थे । नगर की सारी प्रजा निद्राधीन थी । सर्वत्र नीरव शान्ति थी । कनकवती ने आस-पास से लकड़ियां एकत्रित की और मुनि के चारों और चिता के रुप में रख दी । उस निष्ठुर हृदया कनकवती ने उस चिता में आग लगा दी । महाबल मुनि ध्यान में लीन थे । थोड़े ही समय में आग की लपटें महाबल मुनि को स्पर्श करने लगी । महामुनि का देह जलने लगी । परन्तु वे अपने ध्यान से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए ।

वे अपनी आत्मा को समझाने लगे-**``हे आत्मन् ! नरक आदि के**

अन्दर तूंने कितने भयंकर कष्टों को सहन किया है, अतः अब तूं इस स्त्री के प्रति किसी प्रकार का क्रोध न कर, क्षमा धारण कर। क्योंकि यह तो तेरे कर्मों को जलाकर, मित्र का कार्य कर रही है। इस देह के नाश से तेरा कुछ भी अहित नहीं हो रहा है। तूं तो देह से भिन्न अजर-अमर है।''

इस प्रकार शुभ ध्यान में अपनी आत्मा को स्थिर कर, महाबल मुनि शुक्ल ध्यान में आरुढ हो गये। जिससे क्षणभर में ही समस्त कर्मों को भस्मीभूत कर केवलज्ञान रुपी लक्ष्मी के स्वामी बन गये। कुछ ही क्षणों में आयुष्य का क्षय हो जाने से वे सदा के लिए भव बंधन का अन्त कर शाश्वत पद के भोक्ता बन गये। इधर महा मुनि की देह में आग लगाकर कनकवती जंगल की ओर भाग गई।

प्रातःकाल हुआ। महाराजा अपने ऐश्वर्य के साथ मुनि दर्शन के लिये गये, परन्तु वहाँ मुनि के बदले, मुनि के देह की राख देखकर फूट-फूट कर रोने लगे। **अवसर खो जाने के बाद कभी वापस नहीं आता है।**

इसीलिए तो आचारांग सूत्र में कहा है-**'खणं जाणइ पंडिए'**, अर्थात् जो **आए हुए अवसर को जान लेता है-वही सच्चा पंडित है।** अवसर को जानने वाला व्यक्ति ही कार्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जो अवसर को नहीं जानता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है।

शतबल राजा अत्यन्त शोकातुर होकर क्रंदन करने लगा, **``अहो ! आए हुए अवसर को मैं समझ नहीं पाया। पिता का आगमन होने पर भी मैं दर्शन नहीं कर पाया। नदी तट पर पहुंचने के बाद भी मैं प्यासा ही रहा। धिक्कार है मेरे प्रमाद को ! पिता की मृत्यु से अब मैं निराधार बन गया हूं, अब मुझे पिता के दर्शन कब होंगे ? किस दुष्ट ने मेरे पिता के ऊपर यह मरणांत उपसर्ग किया है ?''** इस प्रकार राजा अत्यन्त विलाप करने लगा। राजा के आदेश से गुप्तचर चारों ओर अपराधी की खोज में निकल पड़े।

एक गुप्तचर कनकवती के पद-चिन्हों को खोजता-खोजता वहाँ जा पहुंचा, जहाँ कनकवती छुपी बैठी थी। उसने उसे पकड लिया। केशपाश से खींचकर उसे महाराजा के पास ले आया। सब लोगों ने उसके ऊपर अनेक प्रहार किए, जिससे कनकवती तत्काल मृत्यु पाकर, छट्ठी नरक में चली गई।

महाराजा शतबल अपने मंत्रियों के साथ राजमहल में आ गया, किन्तु उसका शोक किसी भी प्रकार से दूर नहीं हो रहा था। उसने सहस्त्रबल को भी पिता की मृत्यु के समाचार दिए, जिससे वह भी शोक सागर में डूब गया।

इधर गुरुकुलवास में निर्मल संयम धर्म का शुद्ध पालन करती हुई, साध्वी मलयासुन्दरी, ग्यारह अंग की ज्ञाता बनी। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न

हुआ । अपने पिता की मृत्यु से अत्यन्त शोकातुर बने पुत्रों को प्रतिबोधित करने के लिए सागरतिलक नगर आई ।

अपनी माता साध्वी के आगमन से शतबल को कुछ हर्ष हुआ । वह परिवार के साथ अपनी माता के दर्शनार्थ गया । माता साध्वी को वंदन कर उसने उनसे सुखशाता पृच्छा की । साध्वी मलयासुन्दरी ने कहा, ``हे राजन् ! तू व्यर्थ में ही शोक क्यों कर रहा है ? तेरे पिता तो महासत्त्व-शिरोमणि थे । उस स्त्री के उपसर्ग से तो वे निर्वाण पद को प्राप्त कर गये हैं । वे केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति में जा पहुँचे हैं और तूं उनके लिए शोक कर रहा है ? तुम्हें तो उनके निर्वाण पर शोक के बदले महोत्सव करना चाहिये, क्योंकि उन्होंने अजरामर पद प्राप्त किया है ।''

माँ साध्वीजी से प्रतिबोध पाकर शतबल ने शोक का त्याग किया । उसने पिता के निर्वाण स्थल पर मन्दिर बनवा कर उसमें महाबल मुनि की प्रतिमा स्थापित की तथा उनकी स्मृति में महोत्सव मनाया ।

इस प्रकार राजा शतबल तथा नगरनिवासियों को धर्माभिमुख कर साध्वी मलयासुन्दरी पृथ्वीस्थानपुर गई और जिन धर्म की देशना देकर उसने सहस्त्रबल के शोक को भी दूर किया । राजा सहस्त्रबल ने भी शोक त्यागकर, जिनधर्म की सुन्दर आराधना की । जिन मन्दिर निर्माण आदि के अनेक शासन-प्रभावक कार्य करवाये । इस प्रकार अपनी दोनों संतानों को मोक्ष मार्ग की ओर अग्रेसर कर, साध्वी मलयासुन्दरी संयम की साधना में विशेष तल्लीन हो गई ।

निर्मल संयम का पालन कर, स्वदेह की ममता का त्याग किया और समाधि मृत्यु प्राप्तकर बारहवें देवलोक में देव बनी । भविष्य में वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म धारण कर, दीक्षा अंगीकार कर, सिद्धिपद प्राप्त करेगी ।

पू. गणिवर्य श्री रत्नसेन विजयजी म. सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर अप्राप्य
2. सामायिक सूत्र विवेचना ''
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना ''
4. आलोचना सूत्र विवेचना ''
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना ''
6. कर्मन की गत न्यारी 35.00
7. आनन्दघन चौवीसी विवेचना अप्राप्य
8. मानवता तब महक उठेगी ''
9. मानवता के दीप जलाएं ''
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है ''
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो ''
12. युवानो ! जागो ''
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1 ''
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2 ''
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे ''
16. मृत्यु की मंगल यात्रा ''
17. जीवन की मंगल यात्रा ''
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1 ''
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2 ''
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी ''
21. The Light of Humanity ''
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी ''
23. युवा चेतना विशेषांक ''
24. तब आंसू भी मोती बन जाते है ''
25. शीतल नहीं छाया रे...(गुजराती) ''
26. युवा संदेश ''
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1 ''
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2 ''
29. श्रावक जीवन-दर्शन ''
30. जीवन निर्माण विशेषांक ''
31. The Message for the Youth ''
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक ''
33. आनन्द की शोध ''
34. आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-1''
35. आग और पानी (समरादित्य चरित्र) भाग-2''
36. गिरिराज यात्रा ''
37. सवाल आपके जवाब हमारे ''
38. जैन विज्ञान ''
39. आहार विज्ञान ''
40. How to live true चरित्र) भाग-1''
41. भक्ति से मुक्ति (च चरित्र) भाग-2''
42. आओ ! प्रतिक्रमण ''
43. प्रिय कहानियाँ ''
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव ''
45. आओ ! श्रावक बने ''
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी ''
47. जैनाचार विशेषांक ''

48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका अप्राप्य
49. कर्म को नहीं शर्म ''
50. मनोहर कहानियाँ ''
51. मृत्यु-महोत्सव ''
52. Chaitya-Vandan Sootra ''
53. सफलता की सीढ़ियाँ ''
54. श्रमणाचार विशेषांक ''
55. देववंदन तपमाला 25.00
56. नवपद प्रवचन अप्राप्य
57. ऐतिहासिक कहानियाँ ''
58. तेजस्वी सितारें ''
59. सन्नारी विशेषांक ''
60. मिच्छामि दुक्कडम् ''
61. Panch Pratikraman sootra 25.00
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती) अप्राप्य
63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती) ''
64. अमृत की बुंदे ''
65. श्रीपाल मयणा ''
66. शंका और समाधान (द्वि.आ.) ''
67. प्रवचनधारा ''
68. धरती तीरथ'री ''
69. क्षमापना ''
70. भगवान महावीर ''
71. आओ ! पौषध करें ''
72. प्रवचन मोती ''
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह ''
74. श्रावक कर्तव्य-1 ''
75. श्रावक कर्तव्य-2 ''
76. कर्म नचाए नाच ''
77. माता-पिता ''
78. प्रवचन रत्न ''
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें ''
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद ''
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर ''
82. आहार : क्यों और कैसे ? ''
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन 50.00
78. प्रवचन रत्न सुख संपदा अप्राप्य
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखे 35.00
80. क्रोध आबाद तो जीवर अप्राप्य
81. जिनशासन के ज्योतिसदा सुखी 30.00
82. आहार : क्यों और जा पढाएँ ! 35.00
83. महावीर प्रभु का सगौरव गाथा 35.00
78. प्रवचन रत्न सुख संपदा 25.00
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखे
91. प्रेरक-कहानियाँ 25.00
92. आई वडीलांचे उपकार 30.00
93. महासतियों का जीवन संदेश 30.00
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन प्रेसमें

RAJUL ✆ 2514 9863, 2511 0056